पूज्यवर तोताजी के श्रीचरणों में



* ओ३म् *

# ...द् से वेदार्थ

कलियाराम, एम० एस-सी०

प्रकाशक
भीमसेन विद्यालङ्कार,
मन्त्री,
आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब,
लाहौर

वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है, वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।

—दयानन्द

सेनापत्यं च राज्यं च दण्डनेतृत्वमेव च।
सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्रविदर्हति॥

अर्थ—वेदशास्त्र जानने वाला सेनाओं का सञ्चालन, न्याय की व्यवस्था, राज्य और सारे लोक का साम्राज्य कर सकता है।

—मनु

ऋग्वेदादिशास्त्रं हि अनेकविद्यास्थानोपबृंहितं।
प्रदीपवत् सर्वार्थावद्योति सर्वज्ञकल्पं च॥

अर्थ—ऋग्वेदादि वेदशास्त्र दीपक की तरह सब पदार्थों का ज्ञान कराने वाले और सर्वज्ञ जैसे हैं।

—शंकर

फाल्गुन १९९२

१००० प्रतियाँ ] [ मूल्य ।)

मुद्रक
भीमसेन विद्यालङ्कार,
नवयुग प्रिंटिंग प्रैस,
१७, मोहनलाल रोड,
लाहौर

* ओ३म् *

# वैदिक प्रमाणों से
# वेद का अर्थ ।
वा
# वेद-भाष्य की वैदिक शैलियाँ ।

## भूमिका ।

प्रायः सभी ऋषि मुनि वेद को ईश्वरीय ज्ञान, ईश्वर वचन मानते चले आये हैं, अतः ऋग्वेद के पहिले मंत्र में ईळे पद का संबंध अवश्य उसी परमात्मा से मानना पड़ेगा। ईड स्तुतौ धातुपाठ अदादिगण तथा चुरादिगण के अनुसार अग्निमीळे वाक्य का अर्थ इस प्रकार होगाः—

परमात्मदेव ओ३म् प्रतिज्ञा करते हैं कि मैं अग्नि की स्तुति अर्थात् अग्निवाच्य अर्थ के गुणों का कथन करता हूँ और इन्हीं गुणों के समूह से गुणी पदार्थ अग्नि के भिन्न-भिन्न अर्थ होंगे।

अब एक और बात विचारणीय है कि जब आदि सृष्टि में वेद का दान परमात्मा ने किया उस समय वेद के अङ्ग उपाङ्ग कोई पृथक् विद्यमान न थे अर्थात् यदि वह थे तो वेद के अंतर्गत मिश्रितरूप में ही थे। इसी कारण उस समय ऋषियों के पास वेदार्थ करने के लिए कोई साधन वेद तथा उनकी

अपनी बुद्धि के अतिरिक्त विद्यमान न थे। अतः उन्होंने अपनी बुद्धि, केवल वेद पर ही घुमाई अर्थात् वेद के ही भिन्न-भिन्न स्थलों पर बार-बार बुद्धि-पूर्वक विचार किया। फल उनको यह मिला कि उनको वेद समझ में आगये और उन्होंने वेद से ही अङ्गोपाङ्गों को भी क्रमानुसार यथा-समय ढूँढ निकाला।

तात्पर्य इस लेख का यह है, कि आदि में वेद, वेद से ही समझे गये थे, अतः वेद ने अपना अनुवाद स्वयं अवश्य किया होगा, जिससे अब भी उत्तम बुद्धि वाला मनुष्य वेद को वेद से ही समझ सकता है।

यह कथन तो स्वतः सिद्ध ही है, क्योंकि यदि ऐसा न होता तो आदि ऋषि लोग बिना शिक्षा आदि के अपने आप वेद को न समझ सकते। तथापि इस निबन्ध में हमने अनेक उदाहरण स्वयं वेद से देकर वह रीति दर्शानी है, जिससे अब भी वेद उसी पूर्व प्रकार से समझा जा सके। इसके लिए हम पहले वेद का कोई शब्द लेंगे, फिर वेद से उसके अर्थ प्रतिपादन निमित्त अनेक उदाहरण देंगे, फिर उन सबको मिला कर उस वैदिक शब्द का अर्थ लिखेंगे, फिर उस अर्थ को सत्य तथा ऋषि-सम्मत दर्शाने के लिए निरुक्त आदि से उस वैदिक शब्द के वही अर्थ निकाल कर दिखायेंगे।

---

# प्रथम अध्याय।

## अग्नि

ओ३म् अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्।
होतारं रत्नधातमम्॥ ऋ० १।१।१

अर्थ—मैं अग्नि के गुण कहता हूँ। वह पुरोहित, यज्ञ का देव, ऋत्विक्, होता तथा रत्नधातम है।

अग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिरीड्यो नूतनैरुत।
स देवाँ एह वक्षति ॥ ऋ० १।१।२

अर्थ—नये पुराने सभी ऋषियों को अग्नि के गुण कथन करने चाहिए। क्योंकि यही सब दिव्य पदार्थों को एकत्र करता है (इसी कारण मैंने सब से प्रथम अग्नि के ही गुण कहे)।

अग्निना रयिमश्नवत्पोषमेव दिवेदिवे।
यशसं वीरवत्तमम् ॥ ऋ० १।१।३

अर्थ—अग्नि के द्वारा धन को व्यापो (प्राप्त करो तथा भोगो) जो प्रतिदिन पुष्टिकारक यशदायक तथा वीरपुरुषों से युक्त करने वाला हो।

अग्ने यं यज्ञमध्वरं विश्वतः परिभूरसि।
स इद्देवेषु गच्छति ॥ ऋ० १।१।४

अर्थ—जिस अखण्डित यज्ञ को अग्नि पूर्णतया व्याप रहा हो वही दिव्य पदार्थों तक पहुँच सकता है। (अन्य नहीं)।

अग्निर्होता कविक्रतुः सत्यश्चित्रश्रवस्तमः।
देवो देवेभिरागमत् ॥ ऋ० १।१।५

अर्थ—होता, कविक्रतु, सत्य और अत्यन्त विचित्र यश (गुणों) वाला अग्नि देवों के साथ विद्यमान होता है।

यदङ्ग दाशुषे त्वमग्ने भद्रं करिष्यसि।
तवेत्तत्सत्यमङ्गिरः ॥ ऋ० १।१।६

अर्थ—उस प्रिय अग्नि का ही यह सत्य व्रत है, कि वह दाता का सदैव ही कल्याण करेगा।

उप त्वाग्ने दिवेदिवे दोषावस्तर्धिया वयम्।
नमो भरन्त एमसि। ऋ० १।१।७

अर्थ—प्रति दिन अहोरात्र में नमस्कार करते हुए सब लोग बुद्धि के द्वारा अग्नि को प्राप्त होवो।

राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिविम्।
वर्धमानं स्वे दमे॥ ऋ० १।१।८

अर्थ—प्रकाशित अखंडितों के रक्षक, यथार्थता के द्योतक अपने ही योग ( रुकाव, निवास ) में बढ़ते हुए ( अग्नि देव को तुम प्राप्त होवो )।

स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव
सचस्वा नः स्वस्तये॥ ऋ० १।१।९

अर्थ—जैसे पिता पुत्रों के कल्याण के लिये उत्तम उपाय करता हुआ उनको मिलाता है, वैसे ही अग्नि देव हमारे लिये उत्तम उपाय करता हुआ हमें मिलाता है।

इस प्रकार परमात्मदेव ने ऋग्वेद के प्रथम सूक्त में अग्नि शब्द का अर्थ कहा। हमने केवल उसका भाषानुवाद कर दिया है परन्तु वास्तव में अग्नि क्या है जिसका यह कथन हुआ है इसका निर्णय करने के लिए, इसको समझने के लिए उन सब शब्दों के अर्थ का पता लगाना चाहिये, जो परमात्मा ने इस सूक्त में अग्नि के विशेषणरूप से कहे हैं। सामान्यतया तो हमें ईळे इत्यादि अन्य शब्दों के लिए भी वेद को खोजना

चाहिये, कि उनके सम्बन्ध में अन्य कौन-कौन शब्द वेद प्रयोग करता है फिर उन प्रयुक्त शब्दों में से जिन-जिन शब्दों का अर्थ हम समझते हैं उन-उन से हमें अन्य शब्द जो हम नहीं समझते उन का ज्ञान हो जाना सम्भव है।

सब से प्रथम अग्नि शब्द की व्याख्या के लिए इस से मिलते-जुलते इसके विशेषण वेद के अन्य स्थलों में खोजने चाहिये। इस कर्म में हमें अन्यों के अतिरिक्त निम्न-लिखित विशेष उदाहरण मिलते हैं यथाः—

(१) ओ३म् आ देवानामग्रयावेह यातु॰॰ ॥
ऋ० १० । ७० । २

इससे पहले अगले मन्त्रों के साथ मिला कर पता चलता है, कि अग्नि के विषय में यह कहा है, कि दिव्य पदार्थों में से सब से आगे होने वाला (जाने वाला) यहाँ आवे अब अग्नि को यहां अग्रयावा आगे जाने वाला कहा है।

(२) ओ३म् अग्निं देवासो अग्रियमिन्धते॰॰ ॥
ऋ० ६ । १६ । ४८

अर्थ—विद्वान् ( देव ) लोग आगे जाने वाले अग्नि को प्रकाशित ( प्रज्वलित ) करते हैं।

यहां पर अग्नि को अग्रियम् आगे जाने वाला कहा है।

इन १, २ को मिलाने से यह पता चलता है कि अग्रयावा और अग्रियम् समानार्थक शब्द हैं।

(३) ओ३म् गार्हपत्येन सन्त्य ऋतुना यज्ञनीरसि ।
ऋ० १ । १५ । १२

यहां अग्नि के विषय में (क्योंकि इस मन्त्र का देवता अग्नि है) कहा है कि आप यज्ञ के नेता संचालक वा यज्ञ में ले जाये जाने वाले हैं यहां पर अग्नि को **यज्ञनीः** यज्ञ में ले जाया जाने वाला कहा है।

३ के **नी** को १, २ के **अग्र** से मिलने से इन तीनों में कथित गुणों से गुणी **अग्रणी** नाम बनता है जिसका तात्पर्य ही निम्न ४ से प्रदर्शित होता है यथाः—

**(४) ओ३म् अच्छा हि त्वा···ईमहेऽग्निं यज्ञेषु पूर्व्यम्॥**

ऋ० ८।६०।२

अर्थ—यज्ञों में सब से पूर्व (जाने वाले) स्थित किये जाने वाले अग्नि को हम प्राप्त होते हैं।

यहां पर अग्नि को **यज्ञेषु पूर्व्यम्** यज्ञों में मुख्य वा पूर्व, पहले, आगे होने वाला वा जाने वाला वा लिया वा ले जाया जाने वाला कहा है। १ से ४ तक सब को मिला कर अग्नि का गुणवाचक **अग्रणीः** बनता है जिसका अर्थ **अग्रं यज्ञेषु नीयते** इन चार मन्त्रों के मिलान से बनता है। बस जिस अग्नि को कहीं **अग्रयात्रा** कहीं **अग्रियम्** कहीं **यज्ञनीः** कहीं **यज्ञेषु पूर्व्यम्** और कहीं **पुरो नीयते** (ऋ० १।१६३।१२) कहा हो, उस अग्नि शब्द की मुख्य व्युत्पत्ति **अग्रणीः** तथा **अग्रं यज्ञेषु नीयते** द्वारा ही समुचित प्रतीत होती है और अग्नि शब्द का मुख्य अर्थ यज्ञ में प्रथम ही ग्रहण किया जाने वाला ही है।
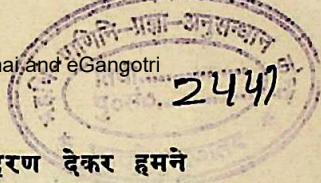
इस प्रकार ऋग्वेद में से अनेक उदाहरण देकर हमने अग्नि शब्द की व्युत्पत्ति निकाल वहीं से अग्नि शब्द का मुख्य अर्थ निकाला है।

अब इसी अर्थ को सत्य तथा ऋषि-संमत दिखाने के लिए हम निरुक्त ७। १४ का उदाहरण देते हैं। यथाः—

**अग्निः कस्मादग्रणीर्भवत्यग्रं यज्ञेषु प्रणीयते।**

यह हमारे उपर्युक्त परिणाम से ऐसा स्पष्ट मिलता है, कि हमें इसकी व्याख्या की तनिक भी आवश्यकता नहीं।

**इळे** जो **अग्नि** से अगला पद है उस पर तथा इसी प्रकार अन्य गौण पदों पर हम अभी अधिक विचार नहीं करेंगे तथापि इतना अवश्य लिखेंगे कि जैसे यहाँ पर **अग्नि-मीळे** है इसी प्रकार ऋ० १। ४४। ५ में (जिसका देवता अग्नि है) अग्नि को कहा है:—

**स्तविष्यामि त्वामहं···अग्ने···हव्यवाहन।**

अर्थात् यहाँ **ईळे** नहीं वरञ्च **स्तविष्यामि** है। आशय इस कथन का यह है, कि जो पाणिनी आदि मुनियों ने **ईड स्तुतौ** लिया है वह ऐसे-ऐसे ही वेद-मन्त्रों से निकाला है। इसी कारण हमने निस्संकोच **ईळे** का अर्थ स्तुते अर्थात् गुण-कथन करता हूँ कर दिया है, कारण कि वेद दोनों धातुओं का प्रयोग किसी का किसी स्थल में और किसी का किसी स्थल में करता है, और यही अर्थ सत्य तथा ऋषि-संमत भी है।

भूमिका में कहे अनुसार परमात्मदेव ने प्रतिज्ञा की है कि मैं अग्नि-गुण कथन करूँगा। इस प्रतिज्ञा को पूरा करने

के निमित्त सब से पहिले परमात्मदेव **पुरोहितम्** शब्द का प्रयोग करते हैं। अतः अब हम **पुरोहितम्** शब्द का व्युत्पत्ति-पूर्वक अर्थ वेद से उदाहरण-पूर्वक निकालेंगे और फिर उसीको सत्य तथा ऋषि-संमत सिद्ध करने के लिए निरुक्तादि का प्रमाण अन्त में देंगे।

## पुरोहितम्

इस शब्द के पद इन उदाहरणों में मिलते हैं:—

१ ओ३म् अग्निं दूतं पुरो दधे··· । ऋ० ८।४४।३

अर्थ—दूत अग्नि को आगे धरता हूँ।

यहां अग्नि के लिए **पुरो दधे** क्रिया वर्णित है अर्थात् अग्नि वह है जो आगे रक्खा जाता है।

२ ओ३म् समिद्धो अग्निर्निहितः पृथिव्याम्... ।

ऋ० २।३।१

अर्थ—पृथिवी में रक्खा हुआ अच्छे प्रकार प्रदीप्त अग्नि।

यहाँ पर भी अग्नि को **निहितः** कहा है।

३ ओ३म् देवः...हितामित्रः...पुरः सदः... ॥

ऋ० १।७३।३

यहाँ पर **हित** का अर्थ धारण किए हुए और **पुरः** का अर्थ पहिले है।

इन तीनों को मिला कर और साथ ही अग्नि के उदाहरण ३ में **पुरः** शब्द के अर्थ देख कर पता चलता है कि **पुरोहित** का अर्थ **पुरः धृतः** है और क्योंकि अग्नि के लिए **पुरो दधे**

निहितः, पुरः नीयते आदि शब्द प्रयुक्त हुए हैं और पुरोहित शब्द अग्नि के ही विशेषणरूपेण प्रयुक्त हुआ है, अतः पुरोहितः की व्युत्पत्ति पुरः धृतः अर्थात् पुर एनं दधाति ही है और क्योंकि अग्नि को यज्ञ में यजमान सर्वदा आगे सामने पहिले स्थापित करता है इसीलिये अग्नि का विशेषण पुरोहित है। इस प्रकार वेद से उदाहरण लेकर हमें पुरोहित शब्द का व्युत्पत्ति-पूर्वक अर्थ प्राप्त हुआ।

अब यही अर्थ सत्य तथा ऋषि-संमत है, इसके लिए निम्न उदाहरण इतना स्पष्ट है, कि हमें उसकी व्याख्या करने की आवश्यकता नहीं, उल्लेख-मात्र पर्याप्त होगा। उदाहरण यह है:—

पुरोहितः पुर एनं दधाति

निरुक्त २। १२

पुरोहित कह कर परमात्मदेव अग्नि के लिए दूसरा विशेषण यज्ञस्य देवम् प्रयुक्त करते हैं और तीसरा विशेषण ऋत्विजम् प्रयुक्त करते हैं, अतः अब हम इन दोनों का अर्थ वेद से करेंगे।

## ऋत्विजम् और यज्ञस्य देवम्

स्वयं यजस्व दिवि देव देवान्किं ते पाकः कृणवदप्रचेताः। यथा यज ऋतुभिर्देव देवानेवा यजस्व तन्वं सुजात॥

ऋ० १०। ७। ६

भवा नो अग्नेऽविता...... ऋ० १०। ७। ७

द्युभिर्हितम्...ऋत्विजम्...... ऋ० १०। ७। ५

स्वस्ति नो दिवो अग्ने पृथिव्या विश्वायुर्धेहि यजथाय देव। सचेमहि तव दस्म प्रकेतैरुरुष्या ण उरुभिर्देव शंसैः॥ ऋ० १०। ७। १

अर्थ—हे अग्ने! हे देव! हे प्रकाशों के द्वारा हितकारी अथवा प्रकाश में स्थित! यज्ञ के लिए हमें पूरी आयु दे। हे देव! द्युलोक में जितने देव हैं उन सबका स्वयं ही यजन (यज्ञ) कर और जैसे ऋतु अनुकूल यजन कर वैसे ही हे सुप्रकट देव! शरीरों को सुखकारी यज्ञ कर।

यहाँ पर द्यौ में स्थित देवों का वर्णन है कि दिवि देवान् अतः सिद्ध है कि देव शब्द का एक अर्थ द्यौ में स्थित है।

अग्नि को इन मंत्रों में देव कहा है और फिर द्युभिर्हितम् भी कहा है अर्थात् प्रकाशों के द्वारा हितकारी और प्रकाश में स्थित यह द्युभिर्हितम् देव शब्द का दूसरा अर्थ है। (यह अर्थ अपूर्व है)।

फिर यज्ञ के लिए जिस देव से आयु माँगी है वह भी यही अग्नि ही है, अतः यहाँ अग्नि को ही कहा है कि पूरी आयु दे यजथाय हे देव अतः वह यज्ञ संबंधी देव अग्नि ही है इसी

लिए अग्नि को यज्ञस्य देव और यजथाय देव कहा है।

फिर कहा है कि स्वयं ही देवों का यथा-ऋतु यजन कर अर्थात् अग्नि ऋतुयाजी ऋतु अनुकूल और हर ऋतु में यथा-योग्य यज्ञ करने वाला है इसीलिए मन्त्र ५ में उसे ऋत्विक् कहा गया है।

और फिर मंत्र ६ में उससे ऋतु-यजन के लिए प्रार्थना है, अतः ऋत्विक् का अर्थ ऋतुयाजी, यथा ऋतुयाजी वेद स्वयं करता है।

और यजन के लिए पूरी आयु देने वाला देव भी अग्नि को वेद ने कहा, क्योंकि उपर्युक्त मंत्र १ में पाठ है:—

स्वस्ति नो·····विश्वायुर्धेहि यजथाय देव।

अपने उत्तरार्द्ध में यह मन्त्र यजथ का अर्थ करता हुआ कहता है, कि यज्ञ के लिए आयु पाकर हम सचेमहि तव तेरा संग करेंगे, अर्थात् वेद कहता है, कि यज और सच समानार्थक हैं क्योंकि यजथ के लिए आयु माँग कर हम सच करेंगे अर्थात् यज का अर्थ सच वा संग करना है। इस प्रकार वेद ने यज्ञ का अर्थ संग बतलाया और वह भी विशेष कर देव-संग और वह भी कैसे देव शंसैः अर्थात् हे देव! स्तुति पूजा-पूर्वक तेरे गुणों के कीर्तन द्वारा अर्थात् यजथ का अर्थ वेद ने सचेमहि तव देव शंसैः शब्दों द्वारा किया।

फिर देव कौन दस्म दाता अर्थात् देव का अर्थ दस्म

दाता किया। यह देव का तीसरा अर्थ है और ऐसे दाता देव की स्तुति—पूजा-पूर्वक संग करना यजथ अथवा यज्ञ है। अर्थात् यज्ञ में दान (क्योंकि जिस देव की स्तुति करते हैं वह स्वयं दाता है अतः उसके उपासक को तो दान करना ही सबसे आवश्यक होगा), देव-पूजा और संग यह तीन अर्थ हैं। इस प्रकार यहाँ वेद ने हमें दान, देव-पूजा और संगति-करण ये तीन अर्थ यजथ के बतलाये।

इसी प्रकार देव शब्द के अर्थ द्यौ में स्थित, द्युभिहित और दाता यह तीन वेद ने कहे।

इस प्रकार यज्ञस्य देव का अर्थ वेद ने स्वयं वह सदा प्रकाश में स्थित प्रकाश द्वारा हितकारी देव जो यज्ञ के लिए सारी आयु देता है और जिसका संग उसकी पूजा तथा दान द्वारा सब करना चाहते हैं किया।

ऋत्विक् का वह अर्थ जो वेद ने स्वयं बतलाया यथा ऋतुयाजी अथवा ऋतुयाजी अर्थात् ऋतु अनुकूल, ऋतुओं के द्वारा, ऋतुसम्बन्धि यज्ञ करने वाला है।

यही अर्थ ऋषियों को भी सम्मत है यथा:—

यज देवपूजासंगतिकरणदानेषु। धातुपाठे॥

ऋत्विक् ऋतुयाजी भवति। निरुक्त ३।१९

देवो दानात्...द्युस्थानो भवतीति वा। निरुक्त ७।१५

इनके अर्थ सरल और वही हैं जो ऊपर किये गये हैं।

अगले पाद में भगवान् अग्नि को होतारं रत्नधातमम्

कहते हैं अतः देखना चाहिये, कि वेद होता के अर्थ क्या करता है और रत्नधातमम् के क्या।

## होता

यजुर्वेद अध्याय २१ में:—

होता यक्षत्समिधाग्निम्‌...आज्यस्य होतर्यज ॥२९॥
होता यक्षत्... ... " " ॥३०॥
होता यक्षत्... ... " " ॥३१॥

इसी प्रकार मन्त्र ४० पर्यन्त कुल मन्त्रों के आदि में होता यक्षत् और अन्त में आज्यस्य होतर्यज शब्द हैं।

होता यक्षत्... .... हविर्होतर्यज ॥४१॥
" " ... ... ...होतर्यज ॥४१॥
" " ... .. हविर्होतर्यज ॥४३।

इसी प्रकार मन्त्र ४७ पर्यन्त कुल मन्त्रों के आदि में होता यक्षत् और अन्त में हविर्होतर्यज शब्द हैं। ४८ से लेकर ५८ पर्यन्त सब मन्त्रों के अन्त में यज शब्द है और ५९ के प्रारम्भ में—

अग्निमद्य होतारमवृणीत...... शब्द हैं।

क्रमशः इनके अर्थ यह है कि होता समिधाओं से अग्नि का यज्ञ करता है ....हे होता! तू घृत का यज्ञ कर। होता यज्ञ करता है... तू घृत का यज्ञ कर। और इसी प्रकार ४०वें मन्त्र पर्यन्त अर्थ हैं।

होता यज्ञ करता है··· हे होता ! तू हवि का यज्ञ कर।
,, ,, ,, ,,··· ,, ,, ,,······ ··यज्ञ कर।
,, ,, ,, ,,··· ,, ,, तू हवि का यज्ञ कर।

और इसी प्रकार मन्त्र ४७ पर्यन्त अर्थ हैं। ४८ से ५८ मन्त्रों के अन्त में यज्ञ कर शब्द हैं और मन्त्र ५९ के आरम्भ में आज होता अग्नि को वरा है शब्द हैं।

क्या इन सब से स्वतः सिद्ध नहीं कि होता का अर्थ वेद यज्ञ करने वाला करता है। अब यही अर्थ ऋषियों को भी संमत है जैसे:—

जुहोतेर्होता। निरुक्त ७। १५।

हु दानादानयोः। धातुपाठे जुहोत्यादिर्गणे।

अर्थात् होता हु से सिद्ध होता हैं और हु का अर्थ देना लेना है। हम ऊपर कह चुके हैं कि यज का अर्थ देना है अतः होता का अर्थ यज्ञ करने वाला जो हमने किया और हु क्रिया का कर्त्ता अर्थात् हवन करने वाला जो निरुक्त व धातुपाठ से सिद्ध हुआ दोनों एक ही अर्थ दान करने वाले को कहते हैं अतः होता का अर्थ यज्ञ करने वाला, हवन करने वाला जो वेद से निकाला गया है वही ऋषि-संमत है, क्योंकि वेद ने कहा है, कि होता ! तू समिधा घृत हवि का अग्नि में यज्ञ कर। होता ! तू हवि का यज्ञ कर। होता जब हवि का यज्ञ करेगा तो वह यज्ञ भी हवन ही होगा क्योंकि हु क्रिया का करने वाला हु क्रिया में प्रयोक्तव्य द्रव्य से जब कोई क्रिया करेगा तो वह अवश्य हु क्रिया ही होगी और उसी की हवन संज्ञा होती हैं

और उसी को वेद में यज्ञः नाम दिया है अर्थात् यज क्रिया कहा है अतः वेद हु और यज को पर्याय धातु मानता है। हु से होता बनता है और यज से यजमान बनता है अतः होता यजमान समानार्थ वा पर्याय हैं।

अतः वेद ने होता को हु धातु से मानते हुए अर्थ यज धातु से करते हुए होता का अर्थ यजमान किया और यही ऋषियों को संमत है क्योंकि वे भी यही मानते हैं।

## रत्नधातमम्

परि वाजपतिः······अग्निः······दधद्रत्नानि दाशुषे ॥
ऋ० ४। १५। ३

साम० पू० ३ मं० १०। यजु० ११। २५। अग्निर्देवता।
एष···दधद्रत्नानि दाशुषे। पवमानः सोमो देवता।
ऋ० ९। ३। ६। साम उ० प्र० ५ अर्ध प्र० २ मं० २॥

दधद्रत्नानि दाशुषे दाता को रत्न देता हुआ। बस जो रत्न दध (धारण) करे वही रत्नधा और जो उनमें उत्तम वही रत्नधातमम्॥

...दाशवांसो दाशुषः सुतम् (विश्वेदेवाः देवता)
ऋ० १। ३। ७॥

सब देव दाता को सुत अर्थात् उत्पन्न पदार्थ देते हैं अतः देव वह है जो दाता को देवे। अग्नि भी एक देव है, अतः वह भी दाता

को देता है । बस दधत् रत्नानि दाशुषे में दधत् का अर्थ देते हुए सिद्ध है क्योंकि दाता को रत्न यह सरल शब्द है। इनके साथ जब दधत् क्रिया का सम्बन्ध किसी देव ( अग्नि ) के विषय में हुआ तो अवश्य इस दधत् का अर्थ देता हुआ ही है, क्योंकि दाता देव दाता मनुष्य के लिये रत्नों का दान नहीं तो और क्या करेगा। इस प्रकार दधत् का अर्थ देता हुआ है। अब दधत् रत्नानि दाशुषे दाता को रत्न देता है कौन ? रत्नधा । शब्दों का पूरा सादृश्य है और अर्थ ऊपर किये जा चुके अतः वेद रत्नधातमम् का अर्थ रत्नों के देने वालों में सर्वोत्तम करता है यही अर्थ ऋषिसंमत है ।

यथा:—

रत्नधातमं रमणीयानां धनानां दातृतमम् ।

निरुक्त ७ । १५

बस यही सत्यार्थ है ।

इस प्रकार अग्निमीळे......का जो वेद का प्रथम मन्त्र है, अर्थ हमने वेद में से निकाल कर रखा है। हमारा विचार है कि सम्पूर्ण वेद इसी प्रकार अपना भाष्य आप ही कर देता है परन्तु इस वेद के वैदिक भाष्य करने के लिए बहुत परिश्रम चाहिए। अतः पाठकों को चाहिए कि वह इस प्रकार वेद-वाक्यों का परस्पर मिलान कर वेद का सत्य अर्थ जानें।

वेद के वैदिक भाष्य बनाने की इस रीति का अवलम्बन कर यास्कान्त निरुक्तकारों ने निघण्टु-भाष्य वेद में से ही निकाले

थे, पर अब वह रीति लुप्त हो गई थी। वेद के विद्यार्थियों के लाभार्थ उसे उपर्युक्त प्रकार से पुनः प्रदर्शित किया है। आशा है, कि वेद के विद्यार्थियों को यह विधि वेदार्थ-प्रदर्शक ज्योति प्रदान करेगी जिससे वह विद्यार्थी ऋषि बन सकेंगे।

वेद से वेद का भाष्य करने की यह प्रथम शैली समाप्त हुई।

—*०*—

## द्वितीय अध्याय

प्रथम अध्याय में हमने अग्नि मीळे के वैदिक अर्थ दर्शाये, अब हम अग्नि शब्द के अर्थ करने की दूसरी वैदिक शैली दर्शाते हैं। पहिली में सब शब्दों की व्युत्पत्ति वेद से निकाल कर उसके व्युत्पत्ति मूलक वेद में दिये अर्थ किये गये थे। इस दूसरी में वेद यह बतलायेगा कि अग्नि किन-किन विशेष पदार्थों का नाम है :—

(१) वेद परमात्मा देवता का वर्णन करता हुआ जिस ब्रह्म को ही यजु० ४०। १७ में ओ३म् कहा है उसी ओ३म् परमात्मा ब्रह्म का वर्णन करते हुए, कहता है—

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः।
तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः॥

यजु० ३२। १

अर्थात् अग्नि आदित्यादि सब नाम उसी परब्रह्म के हैं जिसको तत् भी कहा है। इसी प्रकार—

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान् ।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ॥

अथर्व० ६ । १५ (१०) २८

इस मन्त्र में साफ है, कि एक ही नित्य सत् पदार्थ अग्नि के इन्द्रादि सब नाम हैं। यहां पर भी परमात्मा के बिना और किसी अर्थ पर मन्त्र नहीं घटता, क्यूं कि इन सब नामों वाला कोई और पदार्थ है ही नहीं। अतः सिद्ध है कि यहां पर अग्नि नाम परमात्मा परमेश्वर का है और उसी को सत् भी कहा है। इस रीति से परमात्मा का ओ३म् तत् सत् नाम वेद से ही सिद्ध है और यही सर्वोत्तम नाम है।

इस प्रकार वेद ने अग्नि शब्द का अर्थ परमात्मा किया।

(२) अथर्ववेद काण्ड ३ सूक्त १ वा २ में शत्रुओं पर विजय पाने का वर्णन है, उस सूक्त १ का प्रथम मन्त्र यह है—

अग्निर्नः शत्रून्प्रत्येतु विद्वान् प्रतिदहन्नभिशस्तिमरातिम् ।
स सेनां मोहयतु परेषां निर्हस्तांश्च कृणवज्जातवेदाः ॥

अथर्व० ३ । १ । १

और सूक्त २ का भी प्रथम मन्त्र इससे बहुत मिलता है, वह यह है—

अग्निर्नो दूतः प्रत्येतु विद्वान्प्रतिदहन्नभिशस्तिमरातिम् ।
स चित्तानि मोहयतु परेषां निर्हस्तांश्च कृणवज्जातवेदाः ॥

अथर्व० ३ । २ । १

इसके अर्थ ये हैं :—

"सब उत्पन्न पदार्थों ( जात ) की विद्याओं को जानने वाला ( वेदाः ) विद्वान् ( जिस को हम ) अग्नि ( कहते हैं क्यों कि वह अग्नि विद्याओं में भी कुशल है जो ) हमारा दूत ( है वह ) हमारे शत्रुओं के मुकाबले में जावे और उन क्रूर ( काटने आदि हिंसक क्रिया करने वाले ) तथा दानादि उत्तम क्रिया शून्यों को ( अपने आग्नेयादि अस्त्रों से ) जलाता हुआ उनकी ओर बढ़े। वह ( उन ) दूसरों ( शत्रुओं ) के चित्त को घबराहट में डाल तथा उनकी सेनाओं को भी घबराहट में डाल उन चित्तों तथा सैना ( फौज ) को मूर्च्छित ( बेहोश ) कर उन सब शत्रुओं को हस्त हीन ( कटे हाथों वाले, अथवा शून्य हुए क्रिया असमर्थ हाथों वाले ) कर देवे। ( जिससे कि वह कोई दुष्ट क्रिया न कर सकें ) क्योंकि वह हमारा दूत इन सब जलाने, मूर्च्छित करने, निर्हस्त करने आदि उत्पन्न पदार्थ ( सिद्ध युद्धोपयोगी। विद्याओं को ) जाननेवाला इनमें निपुण है।।"

इन दोनों मन्त्रों से पता चलता है, कि यहां पर अग्नि शब्द का अर्थ वेद "कोई विद्वान् शूरवीर दूत जो शत्रुओं को जला सकता उनके चित्तों को घबराहट में डाल उन की सारी सेना को मूर्च्छित कर उसको निर्हस्त कर सकता है" करता है जिस से साफ है, कि अग्नि यहां पर किसी मनुष्य के लिए ही प्रयुक्त हुआ है। क्योंकि यदि परमात्मा के लिए लें तो मन्त्र ३ सूक्त १ से विरोध होगा और यदि भौतिक अग्नि लें तो वह विद्वान् नहीं जड़ है। मन्त्र ३ यह है—

अमित्रसेनां मघवन्नस्माञ्छत्रूयतीमभि।
युवं तानिन्द्र वृत्रहन्नग्निश्च दहतं प्रति॥

अथर्व० ३।१।३

जिसका अर्थ यह है कि—

"हे इन्द्र! (परमैश्वर्यवान् विद्युत विद्याकुशल सेनापति) आप मघवा (धनवान) हैं और वृत्रहा सब ढकने वालों अर्थात् शुभ गुणों को अपने क्रूरता आदि दुष्ट गुणों से) ढकने वालों (वृत्रों) के मारने वाले हो, आप और अग्नि दोनों हमारे शत्रुओं की सेना के सम्मुख हो उसे जला डालो।"

यहां इन्द्र और अग्नि दोनों को शत्रु सेना नाश के लिए कहा है अतः यहां अग्नि का अर्थ परमात्मा नहीं हो सकता, क्यूं कि वैसा ही दूसरा साथी इन्द्र भी वर्णित है। यदि अग्नि को यहां परमात्मा मानें तो इन्द्र को भी परमात्मा मानना होगा और एक के यहां यह दोनों नाम नहीं क्यूं कि शब्द युवं तुम दोनों पड़ा है अतः दो परमात्मा मानने होंगे तो एकं सद्विप्रा से विरोध आयेगा अतः यहां अग्नि तथा इन्द्र परमात्मा के नाम नहीं और विद्वान् होने से जड़ अग्नि, विद्युत आदि भी अभिप्रेत नहीं, अतः सिद्ध हुआ कि कोई विद्वान् शूर-वीर योधा जो दूत रूप से भी कार्य करता है अर्थात् ऐसे-ऐसे गुणों वाले राजा, सेनानायक, दूत, आदि मनुष्य श्रेष्ठ मनुष्य का नाम अग्नि पद है।

अतः सिद्ध हुआ कि वेद ने अग्नि का अर्थ शूरवीर युद्ध विद्याकुशल विद्वान् दूत मनुष्य किया है।

(३) यजुर्वेद अ० २३ मन्त्र ९ वा ४५ में चार प्रश्न हैं और मन्त्र १० वा ४६ में उनके चार उत्तर हैं। मन्त्र इस प्रकार हैं—

कः स्विदेकाकी चरति क उ स्विज्जायते पुनः।
किंᳬस्विद्धिमस्य भेषजं भूमिरावपनं महत्॥

य० २३। ९ वा ४५

सूर्य एकाकी चरति चन्द्रमा जायते पुनः ।
अग्निर्हिमस्य भेषजं भूमिरावपनं महत् ॥

य० २३ । १०, ४६

कौन अकेला विचरता है ? कौन फिर-फिर प्रकट होता है ? बर्फ (ठण्ड) का इलाज (औषध) क्या है। और (बीज बोने के लिए) बड़ा क्षेत्र क्या है॥ मन्त्र ९ वा ४५

सूर्य अकेला विचरता है, चन्द्रमा फिर-फिर प्रकट होता है। बर्फ का इलाज अग्नि है। बड़ा क्षेत्र भूमि है। मन्त्र १० वा ४६

साफ है यहां परमात्मा का वर्णन नहीं, क्योंकि चार पदार्थों का वर्णन है। न ही (विद्वान्) पुरुषों के यह नाम हैं, क्योंकि चेतनता आदि गुणों का वर्णन नहीं। प्रश्नोत्तररूप हैं और चारों भौतिक पदार्थों के मुख्य गुण वर्णित हैं। अर्थ स्पष्ट है कि यहां इन्हीं सूर्य, चन्द्रमा, आग, ज़मीन का वर्णन है कि सूर्य स्वतः गतिशील तथा स्वयं प्रकाशित होने से अकेला विचरने वाला है, चन्द्रमा उससे संचालित तथा प्रकाशित होता हुआ प्रति मास नये सिरे फिर-फिर प्रकट होता है। क्योंकि अमावस को सर्वथा लुप्त रह कर प्रतिपदा को फिर उदय होता है। बर्फ का इलाज आग है जिसके जलाने से गरमी होने से ठण्ड दूर हो जाती है और बरफ पिघल जाती है और ज़मीन खेती के लिए महान् क्षेत्र है जिस में सब किसानों के खेत आ जाते हैं।

बस सिद्ध हुआ कि यहाँ पर वेद ने 'अग्नि' शब्द का अर्थ साधारण घरों में जलाई जाने वाली आग किया जिससे

बर्फ का इलाज होता है अर्थात् "प्रसिद्ध जलाने वाली भौतिक बाह्य अग्नि" यह अर्थ वेद ने 'अग्नि' शब्द का किया।

(४) अथर्व वेद काण्ड १ सूक्त २५ में ज्वरों का वर्णन है, उनकी अन्येद्युः उभयद्युः, तृतीयक आदि जातियाँ हैं और वह शोक आदि से भी हो जाते हैं पर उन सबका परम पिता असली कारण इस मन्त्र में कहा है—

यदग्निरापो अदहत्प्रविश्य यत्राकृण्वन्धर्मधृतो नमांसि।
तत्र त आहुः परमं जनित्रं स नः संविद्वान्परिवृङ्ग्धि तक्मन्।
अथ० १। २५। १

इसका अर्थ यह है—

अर्थात् ज्वरयुक्त मनुष्य ज्वर के बारे में सोचता है, कि मेरे रसों को जिस मेरे शरीरस्थ भौतिकाग्नि ने जलाया है वही इस ज्वर का परम कारण है उसको ठीक कर इस बुखार से छूटना चाहिए। बुखार को संस्कृत में ज्वर=जव+र= वेग में रमण करनेवाला अर्थात् अग्नि, पंजाबी में ताप अर्थात् अग्नि ही कहा है वह भी इसी कारण है कि इसमें गरमी, सेक, जोश (जव) आगप्रधान लक्षण होता है। अतः यहाँ पर "अग्नि" का अर्थ शरीरान्तर ज्वरादि उत्पादक अग्नि है।

इस प्रकार यह अग्नि का चतुर्थ अर्थ वेद ने बतलाया।

(५) त्वमग्ने द्युभिस्त्वमाशुशुक्षणिस्त्वमद्भ्यस्त्वमश्मनस्परि।
त्वं वनेभ्यस्त्वमोषधीभ्यस्त्वं नृणां नृपते जायसे शुचिः॥
ऋ० २। १। १

इसका अर्थ यह है, कि—

"अग्नि अत्यन्त शीघ्र नाश करनेवाला तथा प्रकाश करने वाला, दिनों से प्रकाशित होता है (क्योंकि दिन का भी अन्तिम प्रकाशक विद्युत अग्नि ही है। यतः यह ही दिन के प्रत्यक्ष निर्माता सूर्य में भी प्रकाश कर रहा है।) वह जलों, पत्थरों, वनों, औषधियों से इन सबके द्वारा पवित्र कारक रूप में प्रकट होता है (क्योंकि इन सबकी शुद्धि बिजली से जल की शुद्धि द्वारा ही होती है) और मनुष्यों का यह रक्षक है (अतः नृपति है।) यहाँ पर अग्नि के दो अर्थ हैं, एक तो परमात्मा जो सारे सूक्त का सांझा अग्नि देवता है और दूसरा विद्युत अग्नि जो इन सब पदार्थों को प्रकाशता, पवित्र करता—रक्षा करता है वह केवल इस मन्त्र में ही उपयुक्त है परन्तु इन सब पदार्थों में विद्युत अग्नि भी अवश्य प्रकाशित है केवल परमात्मा अर्थ नहीं ले सकते क्योंकि परमात्मा रात्रि समय भी रहता है और दिन में भी। सो यदि दिन सीधा परमात्मा से और केवल उसी से प्रकाशित होता तो रात्रि उसी प्रकार प्रकाशित रहती परन्तु दिन रात्रि में प्रकाश का भेद है वह भेद किसी अन्य कारण से है वह कारण विद्युत अग्नि है। जिसकी सूर्य में अधिकता से दिन अधिक प्रकाशता है और चन्द्रमा में न्यूनता से रात्रि न्यून प्रकाशती है। वह विद्युत इसी प्रकार उपरोक्त सब पदार्थों में विद्यमान है अतः यह दोनों अर्थ परमात्मा तथा विद्युत अग्नि यहाँ पर लेने अवश्य हैं। अतः यहाँ वेद ने अग्नि का अर्थ जल, पत्थर, औषधि, वनस्पति, दिन आदि का सांझा प्रकाशक तथा मनुष्यों का रक्षक "विद्युत" अग्नि किया है।

यह अग्नि का वेदोक्त पंचम अर्थ हैं।

इस प्रकार वेद 'अग्नि' आदि देवता रूपेण कथित कुछ शब्दों से अनेक अर्थ ग्रहण कर सम्पूर्ण संसार का तथा ब्रह्म का ज्ञान उन्हीं के द्वारा करवा देता है पर यह साफ बतला देता है कि यहाँ पर अग्नि का यह अर्थ है। इस प्रकार अग्नि शब्द के अनेक अर्थ वेद ने किये हैं, हमने सभी अर्थ ऊपर नहीं किये फिर जहाँ-जहाँ मन्त्रों में जो-जो पदार्थ अग्नि के अर्थरूप से व्याख्यात होगा उन-उन मन्त्रों के व्याख्यान में उस-उस अर्थ का कथन करेंगे परन्तु यह दिग्दर्शन मात्र करवाया है क्योंकि सब अन्य अर्थों में यह ही अर्थ मुख्य है और इनमें भी मुख्य तीन हैं परमात्मा, मनुष्य, विद्युत। परमात्मा के अनेक विशेषण 'अग्नि' के अर्थ होंगे जैसे जातवेदा, वैश्वानर, द्रविणोदा आदि; मनुष्यों में दूत, राजा, विद्वान् आदि अनेक अर्थ अग्नि शब्द के होंगे और विद्युत की अनेक किस्में गरमी रोशनी मिकनातीस आग आदि भी "अग्नि" शब्द के अर्थ होंगे। इन सबका व्यख्यानयथा स्थान होगा।

उपरोक्त व्याख्यान का तात्पर्य केवल यह दर्शाने का है कि वेद अपने अर्थ स्वयं इस प्रकार करता है। विशेष पदार्थ भी अर्थ रूपेण बताता है और शब्द व्युत्पत्ति द्वारा शब्द प्रकाशित गुण समूह जो इस शब्द के वास्तविक अर्थ हैं वह भी स्वयं बतलाता है। यद्यपि सब वैदिक शब्द यौगिक हैं तथापि जहां वेद उनके यौगिक अर्थ व्युत्पत्ति द्वारा दिखलाता है वहां वह शब्द रूढ़ी होकर कैसे उनमें से कुछ विशेष गुणों के वाचक किन्हीं उन गुणों वाले विशेष पदार्थों वा पदार्थ जातियों के

रूढ़ि नाम बन जाते हैं, यह भी उपर्युक्त द्वितीय अर्थ शैली से दिखलाया गया है यथा—"अग्नि वह जो आगे जावे, आदि से हितकारी, ऋतुओं का परिवर्तन करनेवाला आदि हो", यह प्रथम यौगिक शैली का दृष्टान्त है और अग्निर्हिमस्य भेषजम्= "आग बर्फ़ की दवा है", यह द्वितीय शैली का दृष्टान्त है क्योंकि यहाँ अग्नि एक भौतिक पदार्थ विशेष आग का नाम हो गया है। इस प्रकार ऊपर यह दर्शाया गया है कि वेद अपना अर्थ स्वयं करता है।

वेद से वेद का भाष्य करने की यह दूसरी शैली समाप्त हुई।

———

## तृतीय अध्याय

अब तृतीय प्रकार जो इन दोनों का पिता है वह दर्शाया जाता है अर्थात् 'अग्नि' शब्द के जो उपर्युक्त अर्थ हैं वह इस कारण हैं कि इस शब्द में अ, ग, न, इ अक्षर हैं। इन अ, ग, न, इ अक्षरों के जो अर्थ हैं और जो इनके संघात होने से अन्य अर्थ प्रकट हो जाते हैं वही 'अग्नि' के उपर्युक्त अर्थ हैं जैसे कि अग्नि के कुछ अर्थ ऐसे भी हैं जिनमें 'अ' अभाव अर्थ में आकर 'ग' की वाच्य गति का विरोध करके उस अग्न्यर्थ को निश्चल कर देता है यथा सर्वोत्तम सर्वप्रथम परमात्म-देव यद्यपि पूर्व-कथित प्रमाणों के अनुसार अग्न्यर्थ हैं तथापि गति-रहित निश्चल हैं अर्थात् 'अ' का वाच्य प्रथम, मुख्य, उत्तम अर्थ प्रधान स्थिर रहा पर ग का वाच्य गति अर्थ गौण रहा और 'अ' के अभाव अर्थ से ही नष्ट हो गया। अतः सिद्ध हुआ कि

इन्हीं वर्णों के अर्थ कथन सामर्थ्य से 'अग्नि' शब्द उपर्युक्त अर्थ कथन समर्थ हुआ है।

अतः अब इस वेदके अक्षरार्थ पर विचार करेंगे, जो वेद के वैदिक भाष्य करने की तृतीय विधि है इसके विषय में वेद कहता हैः—

(१) ह्वयाम्यग्निं प्रथमं स्वस्तये·· ······ऋ० १। ३५। १

कल्याण के लिए 'अग्नि' जो पहिला सबसे उत्तम आदि होने से प्रथम है उसको बुलाता हूँ।

(२) त्वमग्ने प्रथमः ··ऋ० १। ३१। १, २, ३, ४।

हे अग्नि! तू सबसे 'प्रथम' नाम पहिला सर्वोत्तम वा सबसे आदि में होने वाला वा कार्यों में प्रथम है।

(३) त्वामग्ने प्रथमम्·········ऋ० १। ३१। ११

हे अग्नि! आप जो सबके अग्रगामी अर्थात् प्रथम हो उन आपको········।

इन ५ मन्त्रों में अग्नि को प्रथम कहा है और उधर वर्ण-माला वा अक्षर-माला का प्रथम अक्षर वा वर्ण 'अ' है। अतः अग्नि नाम में 'अ' वर्ण इसी कारण रखा है कि 'अ' प्रथम अर्थ का वाचक है जो अर्थ अग्नि का मुख्य है अतः इसी कारण अग्नि में 'अ' वर्ण सबसे आगे धरा है। इस प्रकार सिद्ध हुआ कि 'अ' का अर्थ मुख्य प्रथम सर्वोत्तमादि होने से और अग्नि का विशेषण 'प्रथम' वेद में बार-बार होने से वेद में प्रयुक्त 'अग्नि' शब्द में धरा 'अ' वर्ण उसके मुख्यार्थ प्रथम मुख्य आदि का ही द्योतक है अतः बुद्धिमान् पुरुष वेद के द्वारा वेद के अक्षरार्थ भी जान सकता है।

अगला वर्ण 'अग्नि' शब्द में 'ग' है। 'ग' का अर्थ गति, संग, संगम, गमन, आगम, गम आदि लोक-सिद्ध शब्दों में 'गति' अर्थात् 'जाना' है। वेद में आया है—

अग्निर्होता कविक्रतुः सत्यश्चित्रश्रवस्तमः ॥
देवो देवेभिरागमत्...... ऋ० । १ । १ । ५

अर्थात् 'अग्नि......देव, देवताओं के साथ सब ओर से जाता है अर्थात् आता है।" अतः साफ़ है कि अग्नि गति करता है नहीं तो आ सकना कैसे सम्भव है। अब हम कह चुके हैं, कि 'ग' का अर्थ गति है, अतः सिद्ध हुआ कि 'अग्नि' में 'ग' वर्ण उसमें गति गुण दर्शाने के लिए आया है और क्योंकि गति अर्थ प्रधान नहीं वरञ्च प्रथमता के पीछे जुड़ने वाला है अतः 'अग्नि' में 'ग' वर्ण 'अ' वर्ण के पश्चात् आया है।

अगला वर्ण 'न' है इसका लौकिक अर्थ नर, नायक, नेता, नारी आदि शब्दों में साँझा अर्थ ढूँढने से 'ले जाना' सिद्ध होता है। वेद में भी अग्नि देवता का वर्णन करते हुए कहा है कि:—

गार्हपत्येन सन्त्य ऋतुना यज्ञनीरसि ।
देवान्देवयते यज........ऋ० १ । १५ । १२

आप यज्ञ के नेता, संचालक, प्रापक, यज्ञ की ओर ले जाने वाले हैं... अतः यहाँ पर भी 'अग्नि' को ले जाने वाला कहा है फिर "पुरो नीयते..."="आगे ले जाया जाता है" यह अग्नि के विषय में ऋग्वेद में अन्यत्र भी कहा है अतः सिद्ध हुआ कि वेद 'अग्नि' को ले जाया जाने वाला वा

ले जाने वाला भी मानता है और इन अर्थों में ही लोक में 'न' वर्ण भी आता है अतः साफ़ है कि अग्नि में 'न' वर्ण इस अर्थ को ही दर्शाने के लिए आया है। परन्तु 'ले जाना' वा 'ले जाया जाना' 'ज,ने' का ही एक प्रकार होने से 'न' का स्थान 'ग' के पीछे रक्खा।

अब सबसे अन्तमें "इ" वर्ण पड़ा है यह 'इण्' आदि 'इ' वर्णको अन्तर्गत रखने वाली धातुओं में गत्यर्थक लोक में प्रसिद्ध है और यह अक्षर पुँल्लिग शब्द को स्त्रीलिंग बनाने में भी प्रयुक्त होता है और स्वभावतः स्त्रियों में चतुराई, टेढ़ापन, पुरुषों की अपेक्षा अधिक माना गया है अतः 'इ' वर्ण 'तिरछी गति, टेढ़ी चाल' का द्योतक लोक में है। अब ग, न, इ अर्थात् जाना, ले जाना, तिरछा जाना इन तीन गत्यर्थक प्रयोगों से पता चलता है कि अग्नि में सब प्रकार की गति है इसी लिये इस एक शब्द में इन तीनों वर्णों को प्रविष्ट किया गया है। अब वेद अग्नि की तीव्र गति तथा उसके विविध पदार्थों में अन्तर्गत होने को दर्शाने के लिये कहता है:—

ओ३म् त्वमग्ने द्युभिस्त्वमाशुशुक्षणिस्त्वमद्भ्यस्त्व-मश्मनस्परि। त्वं वनेभ्यस्त्वमोषधीभ्यस्त्वं नृणां नृपते जायसे शुचिः॥ ऋ० २।१।१

अर्थात् "हे अग्नि! तू अत्यन्त शीघ्र गति वाला है तू जलों, वनों, पत्थरों, ओषधियों से प्रकट होता है···तू नेताओं का सरदार......"—इस से सिद्ध हुआ कि वेद अग्नि को बहुतों के अन्तर्गत अत्यन्त शीघ्र गति वाला, सब तिरछी सीधी चालों वाला मानता है और टेढ़ी चाल का वाचक वर्ण लोक में 'इ'

और सीधी का 'ग' और दूसरों को गति करवाने का 'न' है अतः सिद्ध है कि वेद में जो अग्नि के अन्त में 'इ' वर्ण है वह बाकी रही अर्थात् तीसरी प्रकार की निकृष्ट गति को दर्शाने के लिये ही अन्त में रक्खा गया है और सर्वोत्कृष्ट ज्ञान आदि की धारक गति के वाचक 'ग' को इन तीनों गत्यर्थ वाचक वर्णों में सब से आगे रक्खा है और अन्यों को लेजाना यद्यपि उत्तम कर्म है तथापि गति का ही एक भेद है इस कारण 'ग' के पीछे 'ग' और 'इ' के मध्य में उस अर्थ का वाचक 'न' आया है।

इस प्रकार 'अग्नि' शब्द के अक्षरार्थ प्रथम, मुख्य, सर्वोत्तम, गति करने वाला, ले चलने वाला और सीधी तिरछी सभी चालों वाला आदि हुए और वेद भी उन अर्थों को अग्नि में समाविष्ट मानता है। बस इसी कारण उन वेदोक्त अर्थों का एक शब्द के द्वारा ज्ञान करवाने के लिये उन अर्थों के वाचक उन अ, ग, न, इ वर्णों को एकत्र कर 'अग्नि' शब्द बना कर उस का प्रयोग उन सब गुण-कर्म-समूह अथवा उन गुणों से गुणी तथा क्रियाओं से क्रियावान् सब पदार्थों के लिये किया है।

वेद से वेद का भाष्य करने की यह तीसरी शैली समाप्त हुई।

---

## चतुर्थ अध्याय।

गत अध्यायों में हम ने वेद भाष्य की तीन वैदिक रीतियाँ दर्शायीं हैं। इस अध्याय में चौथी रीति दिखलाते हैं। जैसे "आप्टे कोष" आदि लौकिक कोषों में पहिले एक शब्द लिखकर फिर उसके सम्पूर्ण अर्थ कोषकार लिख देता है ठीक इसी प्रकार वेद में भी पहिले एक शब्द लिखकर फिर उसके

बहुत सारे अर्थ वेद-निश्वासक अर्थात् परमात्मदेव लिख देते हैं, भेद केवल इतना है कि लौकिक कोषों में शब्द एक बार ही लिखते हैं पर वेद रूपी कोष में प्रत्येक अर्थ के पूर्व वही शब्द बार-बार लिखा होता है। उदाहरणार्थ लौकिक कोष में 'स्वर्ण' शब्द लिख कर उसके "घर्म, अर्क, शुक्र, ज्योति और सूर्य" अर्थ सब के सब इकट्ठे लिखे जायँगे पर वेद में घर्म अर्क आदि सब अर्थों के साथ स्वर्ण शब्द बार-बार लिखा जाता है यथाः—

(१) स्वर्ण घर्मः स्वाहा। स्वर्णार्कः स्वाहा। स्वर्ण शुक्रः स्वाहा। स्वर्ण ज्योतिः स्वाहा। स्वर्ण सूर्यः स्वाहा॥
यजु० १८। ५०॥

अर्थात् घर्म, अर्क, शुक्र, ज्योति और सूर्य इन पाँचों का सुन्दर (स्वाहा) नाम स्वर्ण है अर्थात् स्वर्ण शब्द के ये पाँच अर्थ हैं। इस प्रकार वेदों के शब्दों के लिये वेद स्वयं ही कोष (Dictionary) है।

इस चतुर्थ रीति का पाठकों को भली प्रकार ज्ञान करवाने के लिये हम यहाँ बहुत सारे उदाहरण देते हैंः—

(२) अग्निः पशुरासीत्....। वायुः पशुरासीत्...। सूर्यः पशुरासीत्... ॥ यजु० २३। १७॥

अर्थात् अग्नि, वायु और सूर्य के सम्बन्ध में पशु शब्द प्रयुक्त हुआ है।

(३)...अग्निर्गन्धर्वस्तस्यौषधयोऽप्सरसः...॥ ३८ ॥ ...सूर्यो गन्धर्वस्तस्य मरीचयोऽप्सरसः...॥३९॥...चन्द्रमा गन्धर्वस्तस्य नक्षत्राण्यप्सरसः...॥४०॥...वातो गन्धर्व-

स्तस्यापो अप्सरसः...॥४१॥ ..यज्ञो गन्धर्वस्तस्य दक्षिणा अप्सरसः...॥४२॥ यजु० १८ । ३८–४२ ॥

अर्थात् अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा, वात और यज्ञ गन्धर्व हैं और इसी क्रम से ओषधियाँ, मरीचियाँ, नक्षत्र, आपः, और दक्षिणा इनकी अप्सराएँ हैं।

(४)...पुञ्जिकस्थला च क्रतुस्थला चाऽप्सरसौ...॥१५॥ मेनका च सहजन्या चाप्सरसौ...॥१६॥...प्रम्लोचन्ती चानुम्लोचन्ती चाप्सरसौ ..॥१७॥...विश्वाची च घृताची चाप्सरसौ ॥१८॥...उर्वशी च पूर्वचित्तिश्चाप्सरसौ...॥१९॥

यजु० ॥ १५–१९ ॥

अर्थात् पुञ्जिकस्थला, क्रतुस्थला, मेनका, सहजन्या, प्रम्लोचन्ती, अनुम्लोचन्ती, विश्वाची, घृताची, उर्वशी और पूर्वचित्ति ये सब अप्सराएँ हैं।

(५) का स्विदासीत्पूर्वचित्तिः ..॥ मं० ११, ५३ ॥ द्यौरासीत्पूर्वचित्तिः ॥ मं०१२,५४ ॥ यजु० अ० २३ ॥

अर्थात् मं० ११, ५३ प्रश्न करते हैं कि पूर्वचित्ति कौन थी ? मं० १२, ५४, उत्तर देते हैं कि द्यौ ही पूर्वचित्ति थी अर्थात् यहाँ प्रश्नोत्तर रूप से द्यौः को पूर्वचित्ति कहा। इसी प्रकार इन्हीं मन्त्रों में अश्व को बृहद्वयः, अविः को पिलिप्पिला, रात्रि और अजा को पिशङ्गिला, तथा श्वा को कुरुपिशङ्गिला लिखा है। यथाः—

(६) द्यौरासीत्पूर्वचित्तिरश्व आसीद् बृहद्वयः। अविरा-

सीत्पिलिप्पिला शात्रिरासीत्पिशङ्गिला ॥ मं० १२, ५४ ॥
अजारे पिशङ्गिला श्वावित्कुरुपिशङ्गिला ॥ मं० ५६ ॥

यजु० अ० २३ ॥

इन के अर्थों का सार ऊपर वाली टिप्पणी ५ में दे दिया गया है।

(७) अग्निर्देवता वातो देवता सूर्यो देवता चन्द्रमा देवता वसवो देवता रुद्रा देवतादित्या देवता मरुतो देवता विश्वे देवा देवता बृहस्पतिर्देवतेन्द्रो देवता वरुणो देवता ॥

यजु० १४ । २० ॥

अर्थात् अग्निः, वातः, सूर्यः, चन्द्रमाः, वसवः, रुद्राः, आदित्याः, मरुत, विश्वे देवाः, बृहस्पतिः, इन्द्रः और वरुण देवता।

(८) माच्छन्दः प्रमाच्छन्दः प्रतिमाच्छन्दो अस्त्रीवयश्छन्दः पंक्तिश्छन्दः उष्णिक् छन्दो बृहती छन्दोऽनुष्टुप् छन्दो विराट् छन्दो गायत्री छन्दस्त्रिष्टुप् छन्दो जगती छन्दः ॥ मं० १८ ॥ पृथिवी छन्दोऽन्तरिक्षंछन्दो द्यौश्छन्दः समाश्छन्दो नक्षत्राणि छन्दो वाक् छन्दो मनश्छन्दः कृषिश्छन्दो हिरण्यञ्छन्दो गौश्छन्दोऽजा छन्दोऽश्वश्छन्दः ॥ मं० १९ ॥ यजु० अ० १४ ॥

अर्थात् मा, प्रमा, प्रतिमा, अस्त्रीवय, पंक्ति, उष्णिक् बृहती, अनुष्टुप्, विराट्, गायत्री, त्रिष्टुप्, जगती, पृथिवी,

अन्तरिक्ष, द्यौ, समाः, नक्षत्र, वाक्, मन, कृषि, हिरण्य, गौ, अजा और अश्व छन्द हैं।

(९) मूर्धा वयः प्रजापतिश्छन्दः क्षत्रं वयो मयन्दं छन्दो विष्टम्भो वयोऽधिपतिश्छन्दो विश्वकर्मा वयः परमेष्ठी छन्दो वस्तो वयो विबलं छन्दो वृष्णिर्वयो विशालं छन्दः पुरुषो वयस्तन्द्रं छन्दो व्याघ्रो वयोऽनाधृष्टं छन्दः सिꣳहो वयश्छदिश्छन्दः पष्ठवाड् वयो बृहती छन्द उक्षा वयः ककुप् छन्द ऋषभो वयः सतोबृहती छन्दः॥ मं० ९॥ अनड्वान्वयः पंक्तिश्छन्दो धेनुर्वयो जगती छन्दस्त्र्यविर्वयास्त्रिष्टुप् छन्दो दित्यवाड् वयो विराट् छन्दः पंचाविर्वयो गायत्री छन्दस्त्रिवत्सो वय उष्णिक् छन्दस्तुर्य्यवाड् वयोऽनुष्टुप् छन्दः। लोकं ता इन्द्रम्॥ मं० १०॥

यजु० अ० १४॥

अर्थात् मूर्धा, क्षत्र, विष्टंभ, विश्वकर्मा, बस्त, वृष्णि, पुरुष, व्याघ्र, सिंह, पष्ठवाट्, उक्षा, ऋषभ, अनड्वान्, धेनु, त्र्यविः, दित्यवाट्, पंचाविः, त्रिवत्सः और तुर्यवाट् वयः हैं और इसी क्रम से प्रजापति, मयन्द, अधिपति, परमेष्ठी, विबल, विशाल, तन्द्र, अनाधृष्ट, छदिः, बृहती, ककुप्, सतोबृहती, पंक्ति, जगती, त्रिष्टुप्, विराट्, गायत्री, उष्णिक् और अनुष्टुप् छन्द हैं।

(१०) अदितिर्द्यौरदितिरन्तारिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः। विश्वेदेवा अदितिः पञ्चजनाः अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम्॥ यजु०। २५। २३॥

अर्थात् अदितिः परमात्मा के नाम द्यौ, अन्तरिक्ष, माता, पिता, पुत्र, विश्वेदेवा, पञ्चजना, जातं और जनित्वम् हैं।

(११) तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः। तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः॥

यजु०। ३२। १॥

अर्थात् उसी विद्युत् पुरुष परमात्मा के अग्नि, आदित्य, वायु, चन्द्रमा, शुक्र, ब्रह्म, आप और प्रजापति नाम हैं।

(१२) इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्। एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः॥ ऋ० १। १६४। ४६॥

अर्थात् "एक, सत्, अग्नि" परमात्मा के ही इन्द्र, मित्र, वरुण, दिव्य, सुपर्ण, गुरुत्मान्, यम और मातरिश्वा नाम हैं।

(१३) अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा। सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्य्यः स्वाहा। अग्निर्वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा। सूर्यो वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा। ज्योतिः सूर्य्यः सूर्य्यो ज्योतिः स्वाहा॥ यजु०। ३। ९॥

अर्थात् अग्निः, ज्योतिः, सूर्यः और वर्चः समानार्थक शब्द हैं अर्थात् इन में से प्रत्येक के बाकी तीनों ही अर्थ हैं क्यों-कि यह सब एक ही के नाम हैं इसी लिये तो मन्त्र कहता है कि जो अग्नि है उसी को ज्योति और जो ज्योति है उसी को अग्नि कहा जाता है। इसी प्रकार सूर्य और ज्योति,

अग्नि और वर्च्च, ज्योति और वर्च्च और सूर्य और वर्च्च को भी मन्त्र ने कहा।

(१४) पृथिवी धेनुस्तस्या अग्निर्वत्सः···॥२॥ अन्तरिक्षं धेनुस्तस्या वायुर्वत्सः···॥४॥ द्यौर्धेनुस्तस्या आदित्यो वत्सः···॥६॥ दिशो धेनवस्तासां चन्द्रो वत्सः···॥८॥

अथर्व० का० ४ सू० ३९ ॥

अर्थात् पृथिवी, अन्तरिक्ष, द्यौ और दिशाएँ धेनु हैं और इसी क्रम से अग्निः, वायु, आदित्य और चन्द्र वत्स हैं।

अब तक इस अध्याय में जितने शब्दों का व्याख्यान हुआ उन सब का अर्थ-कथन वेदने उस शब्द के पर्याय शब्द देकर किया, अर्थात् एक नाम शब्द का एक ही अर्थ शब्द कहा।

अब वेद एक शब्द का भाव कुछ शब्दों द्वारा खोलता है जैसे ( Creator ) का अर्थ ( One who creates ) कोषों में दिया जाता है इसी प्रकार प्रजापति का अर्थ प्रजा उत्पन्न करने वाला वेद करता है यथा:—

(१) प्रजापतिर्जनयति प्रजा इमाः··· ॥

अथर्व० का० ७ सू० १९ मं० १

अर्थात् प्रजापति इन प्रजाओं को उत्पन्न करता है। इसी प्रकार के अन्य बहुत से उदाहरण यहाँ लिखे जाते हैं। यथा:—

(२) सविता प्रसवानामधिपतिः···॥१॥ अग्निर्वनस्पतीनामधिपतिः···॥२॥ द्यावापृथिवी दातॄणामधिपत्नी··· ॥३॥ वरुणोपामधिपतिः···॥४॥ मित्रावरुणौ वृष्ट्याधि-

पती··· ॥५॥ मरुतः पर्वतानामधिपतयः··· ॥६॥ सोमो वीरुधामधिपतिः··· ॥७। वायुरन्तरिक्षस्याधिपतिः··· ॥८॥ सूर्यश्चक्षुषामधिपतिः··· ॥९॥ चन्द्रमा नक्षत्राणामधिपतिः··· ॥१०॥ इन्द्रो दिवोधिपतिः··· ॥११॥ मरुतां पिता पशूनामधिपतिः··· ॥१२॥ मृत्युः प्रजानामधिपतिः··· ॥१०॥ यमः पितृणामधिपतिः··· ॥१४॥

अथर्व० का० ५ सू० २४ ॥

अर्थात् सविता सब उत्पत्तियों का अधिष्ठाता, अग्नि वृक्ष वनस्पतियों का, द्यौ और पृथिवी दाताओं के, वरुण जलों का, मित्र और वरुण वर्षा के, मरुत पर्वतों के, सोम ओषधियों का, वायु अन्तरिक्ष का, सूर्य आँखों का, चन्द्रमा नक्षत्रों का, इन्द्र द्यौ का, मरुतों का पिता पशुओं का, मृत्यु प्रजाओं का और यम पितरों का अधिष्ठाता है।

(३) भूतो भूतेषु पय आदधाति स भूतानामधिपतिर्बभूव···· ॥ अथ० ४। ८। १

अर्थात् स्वयं-भूत होता हुआ भी जो अन्य भूतों में दुग्धादि उत्तम पदार्थों का दान धारण आदि करता है वही भूतों का अधिपति हुआ ( अर्थात् होता है ) अतः अधिपति वह है जो पयः आदि का आधान करे।

इस प्रकार इस चतुर्थ अध्याय में वेद के वैदिक भाष्य करने की चतुर्थ रीति दर्शायी गई।

——

## पंचम अध्याय

# अग्नि, इन्द्र, वायु, सविता, यम ।

गताध्यायों में वेद से वेद का भाष्य करने की शैलियाँ दिखा कर इस अध्याय में कुछ वैदिक शब्दों का अर्थ उन्हीं रीतियों का अवलम्बन कर दिखलाया जाता है यथा प्रथमाध्याय में अग्नि शब्द के पांच अर्थ परमात्मा, आग, ज्वरोत्पादक शरीर की अन्तरीय अग्नि, बिजुली और विद्वान् दूत युद्धविद्या-कुशल सेनापति दिखाये गये थे अतः पहिले अग्नि के ही कुछ और वैदिक स्फुट अर्थ यहाँ लिखते हैं यथाः—

(१) विशां राजानमद्भुतमध्यक्षं धर्मणामिमं ।
अग्निमीळे स उ श्रवत् ॥ ऋ० ८ । ४३ । २४॥

अर्थात् "मैं इस प्रजाओं के राजा, धर्मों के विचित्र अधिष्ठाता अग्नि महाराज की स्तुति करता हूँ और वह इस मेरी स्तुति को सुनते हैं। यहाँ पर कोई प्रजा-गत मनुष्य अपने धर्मात्मा राजा की स्तुति करता है। अतः यहाँ अग्नि शब्द का अर्थ किसी देश का 'राजा' है.।

२. मा नो हृणीतामतिथिर्वसुरग्निः पुरुप्रशस्त एषः ।
यः सुहोता स्वध्वरः॥ ऋ० ८ । १०३ । १२ ॥

अर्थात् निकृष्ट कोटि का कोई ब्रह्मचारी जिसने कुछ शुभ गुणों को अपने में धारण कर लिया है ऐसा वसु, बड़ा यश वाला यह, उत्तम हवन आदि हिंसा-रहित यज्ञ करने वाला

घूमता हुआ अतिथि यह विद्वान् ब्रह्मचारी अग्नि हमें त्याग न दें वरंच सदा हमारे घर में आकर हमें उपदेश दे कर सुखी करे। अतः यहाँ अग्नि का अर्थ वसु "अतिथि" है।

३. त्वमग्ने बृहद्वयो दधासि देव।
दाशुषे कविर्गृहपतिर्युवा ॥ ऋ० ८।१०२।१॥

अर्थात् नवयुवक, धर्मात्मा, विद्वान्, यशस्वी, गृहस्थी अग्नि उस उत्तम पदार्थ देने वाले के लिये दीर्घायु का दान करता है (क्योंकि वह स्वयं अपनी विद्या तथा सदाचार के द्वारा दीर्घायु प्राप्त करता है और अन्य अपने प्रिय को धनादि दक्षिणा देने वालों को इन्हीं के द्वारा दीर्घायु प्रदान करता है। अतः यहाँ अग्नि शब्द का अर्थ यशस्वो सदाचारी धर्मात्मा उत्तम युवा गृहस्थी है।

४. वया इदग्ने अग्नयस्ते अन्ये त्वे
विश्वे अमृता मादयन्ते।
वैश्वानर नाभिरसि क्षितीनां
स्थूणेव जनाँ उपमिद्ययन्थ ॥

ऋ० १।५६।१

अर्थात् हे अग्ने! सारे संसार की सञ्चालक वैश्वानर अग्नि परमात्मा की शक्ति जो प्रकृति में प्रविष्ट हो सबको चला रही है—अन्य सब अग्नियाँ तेरी ही शाखाएँ तेरे ही भिन्न-भिन्न रूप हैं, तुझमें ही सारे अवर लोग सदा आनन्द भोगते हैं और तू ही सब मनुष्यों के लिए घर देहली दहलीज् स्थूणा की न्यायीं उन्हें अपने ही अन्दर रोके रखती है।

यहाँ अग्नि शब्द का अर्थ ब्रह्म की वह शक्ति है जो प्रकृति में प्रविष्ट हो नाना प्रकार की Energy को अपने भिन्न-भिन्न विविध रूपों के आकार में प्रकट करती है। सब अन्य अग्नियाँ Manifestations of Energy इस Divine Energy की ही विविध शाखाएँ वा अनेक रूपान्तर हैं।

इसी अर्थ में निम्न अन्य उदाहरण भी प्रमाण हैं। यथा—

एक एवाग्निर्बहुधा समिद्धः
एकः सूर्यो विश्वमनु प्रभूतः।
एकैवोषाः सर्वमिदं विभात्येकं
वा इदं वि बभूव सर्वम् ॥ ऋ० ८।५८।२॥

अर्थात् एक ही अग्नि अनेक प्रकार से प्रकाशित है इत्यादि।

एकस्त्रेधा विहितो जातवेदः। अथर्व

अर्थात् एक ही जातवेदा अग्नि तीन प्रकार का कहा जाता है, विधान किया जाता है......।

इस प्रकार अग्नि शब्द के चार और अर्थ हमने यहाँ किये १. राजा, २. अतिथि, ३. गृहस्थी, ४. ब्रह्मशक्ति। इस प्रकार हमने अब तक कुल ९ अर्थ अग्नि शब्द के किये। इसी प्रकार इसके और अनेक अर्थ हैं जो हम फिर किसी अध्याय में करेंगे। अब इन्द्र शब्द के अर्थ किये जाते हैं यथा :—

## "इन्द्र"

ओ३म् इन्द्रो दिव इन्द्र ईशे पृथिव्या
इन्द्रो अपामिन्द्र इत्पर्वतानाम्।
इन्द्रो वृधामिन्द्र इन्मेधिराणामिन्द्रः

क्षेमे योगे हव्य इन्द्रः ॥ ऋ० १० । ८९ । १० ॥

अर्थात् द्यौ, पृथिवी, जल, पर्वत, बढ़ते हुए और मेधा को प्राप्त करते हुए मनुष्यों पर भी इन्द्र राज्य कर रहा है। इन सब का इन्द्र ईश्वर ( राजा ) है और इन्द्र को ही रक्षा तथा अप्राप्त की प्राप्ति के निमित्त बुला कर वा पुकार कर उसी से प्रार्थना करनी चाहिये।

"ईश" धातु जो लोक-प्रसिद्ध है स्वयं ही इन्द्र को द्यौ पृथिवी आदि से सम्बद्ध करता हुआ इस मन्त्र में उपस्थित है। अतः इन्द्र का मुख्य अर्थ "ईश्वर" ( राजा, हुकमरान ) है, यही अर्थ सत्य तथा ऋषि सम्मत है यथा—

इन्द्रः···इन्दतेवैंश्वर्य्यकर्मणः ।

निरुक्त० १० । ८ ॥

इदि परमैश्वर्य्ये । धातुपाठे भ्वादिर्गणः ॥

अर्थात् इदि धातु परमैश्वर्य्य वा ऐश्वर्य्य अर्थ में आता है और उसी से इन्द्र शब्द बना है।

ईश, ऐश्वर्य्ये धातुपाठे अदादिर्गणः ।

ईश भी ऐश्वर्य्यार्थक है इससे ईश्वर शब्द बना है। अतः हमारा वेद से निकाला इन्द्र शब्द का अर्थ ईश्वर यास्क तथा पाणिनी आदि ऋषि सम्मत है।

"इन्द्र" में उपर्युक्त अर्थ इस कारण है कि इसमें इ, न, द, तथा र वर्ण हैं जिनका अर्थ लौकिक प्रयोग में गति, नेतृत्व वा नीति, दम, दान, दया तथा रमण, राजन आदि क्रमशः वर्णानुसार है अतः "इन्द्र" उस अर्थ का द्योतक है जिसमें यह सब गुण पाये जायँ अर्थात् जो कोई भी ज्ञान, गमन, प्राप्ति, वाहन,

दम, दान, दया, प्रकाशन, हुकूमत, रमण आदि गुणों से गुणी पदार्थ है वही इन्द्र है। अतः इन्द्र का उपर्युक्त अर्थ "ईश्वर" सर्वथा अनुकूल है और ऐसे गुणी परमात्मा, राजा, नेता, Commander-in-chief तथा उसके अधीन अन्य Subordinate Commanders, Captains आदि न्यायाधीश, दानी, धनाढ्य तथा ऐश्वर्य्य-युक्त होकर हरेक प्रकार के आनन्द में रमण करते हुए अपने दानादि गुणों से प्रकाशित ऐश्वर्य्य-शाली पुरुष सब इन्द्र शब्द के वाच्यार्थ हैं। पदार्थों में विद्युत् अतीव शीघ्र-गति, सब विद्युत् द्वारा संचालित यन्त्रादिकों को नेता, वाहक, सब विद्युत् विद्या से युक्त विद्वानों में दम, दान, दया गुण देनेवाली और उन्हें प्रसन्नता आदि में रमण कराने वाली होने से "इन्द्र" शब्द का वाच्यार्थ प्रसिद्ध है।

इस प्रकार प्रथम तथा तृतीय शैली के अनुसार इन्द्र शब्द के अर्थ ऊपर किये गये। अब द्वितीय शैली के अनुसार इन्द्र के अर्थ कहते हैं यथा :—

१. इन्द्रं मित्रं वरुणम्…

यह मन्त्र जो अग्नि-अर्थ-करण में दिया है उससे सिद्ध है कि "इन्द्र" नाम परमात्मा का है। अतः "इन्द्र" शब्द का प्रथम अर्थ परमात्मा है। इसी रीति से :—

२. इन्द्रो दिव इन्द्र ईशे…

मन्त्र में भी कहा है कि "इन्द्र" ही द्यौ, पृथिवी, आप, पर्वत आदि सबका ही ईश्वर है। ऐसा ईश्वर कोई लौकिक राजा तो हो ही नहीं सकता जिसका द्यौ पर भी शासन हो। अतः यहाँ भी "इन्द्र" शब्द का अर्थ ईश्वर परमात्मा ही है।

२. यो राजा चर्षणीनां याता
रथेभिरध्रिगुः । विश्वासां तरुता
पृतनानां ज्येष्ठो यो वृत्रहा गृणे ॥१॥
इन्द्रं तम्...॥२॥ ऋ० ८ । ७० । १,२ ॥

अर्थात् जो मनुष्यों का राजा, रथों में सवार होकर जाने वाला, सब संग्रामों को तैर जाने वाला अर्थात् जीतने वाला और अपने दुष्ट गुणों से अपने शुभ गुणों के ढकने वालों के मारने वालों में सबसे बड़ा अर्थात् सबसे (ज़बरदस्त) बलवान् है उस इन्द्र को...।

अतः सिद्ध है कि यहाँ इन्द्र शब्द का अर्थ (युद्धों में विजयी) (मनुष्य) राजा है।

३. इन्द्रमहं वणिजं चोदयामि
स न एतु पुर एता नो अस्तु।
नुदन्नरातिं परिपन्थिनं मृगं
स ईशानो धनदा अस्तु मह्यम्॥ अथर्व ३ । १५ । १

अर्थात् मैं व्यापारी (बनिये) इन्द्र को प्रेरणा करता हूँ कि वह हमारे पास आ हमारा अगुआ (Leader) (Manager of our firm or business concern) बनें। वह सब रुकावटों को हटाता हुआ मेरे लिए धन देने वाला स्वामी हो।

अर्थात् यहाँ किसी व्योपारी का नौकर वा (गरीब) धन-हीन दरिद्र साथी उसे प्रेरणा करता है। यह सारा व्यापार सूक्त है और इसमें साफ़ है कि यहाँ इन्द्र शब्द का अर्थ कोई वणिक् व्योपारी ही हैं।

इस प्रकार हमने वेद के वैदिक भाष्य की प्रथम तीन रीतियों से इन्द्र शब्द के कुछ अर्थ किये। अब वायु शब्द के अर्थ करते हैं यथा :—

## वायु

ओ३म् आत्मा देवानां भुव-
नस्य गर्भो यथावशं चरति देव एषः।
घोषा इदस्य शृण्विरे
न रूपं तस्मै वाताय हविषा
विधेम ॥ ऋग्० १०। १६८। ४॥

अर्थात् सारा संसार जिसके अन्दर (जैसे बालक गर्भ के अन्दर) सुरक्षित है, जो सब दिव्य पदार्थों का (भी) जीवन है, जिस का शब्द सुनते हैं परन्तु रूप कोई नहीं देखता (कारण कि वह अरूप है) उस वायु के लिये (उस को पवित्र करने के लिये) हम आहुति देवें (अथवा श्रद्धा से भक्ति-भाव धारण करें)।

इस मन्त्र से स्पष्ट है कि यहाँ वायु का अर्थ हवा air ही है; क्योंकि यही ऐसा पदार्थ है जिस का रूप तो नहीं दिखाई देता पर जिस के चलने का शब्द सुनता है और जो देव, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि सब का जीवन है।

इस के निरुक्ति-पूर्वक अर्थ के निमित्त जब हम वेद को खोलते हैं तो वहाँ यह वाक्य हमें मिलते हैं यथा :—

(१) वात आवातु भेषजम् ॥ ऋ० १०। १८६। १॥
अर्थात् औषध-रूप वायु चले।

(२) मयोभूर्वातो अभिवातूस्रा...॥ ऋ० १० ।१६९।१ ॥

अर्थात् गौओं के सामने सुखकारक वायु चले ।

(३) वेत्यध्वर्युः पथिभि...॥ ऋ० ८ । १०१ । १० ॥

अध्वर्युः ( वायु ) मार्गों से जाता है ।

(४) आ नो वायो महे तने याहि...॥

ऋ० ८ । ४६ । २५ ॥

हे वायु ! हमारे महान् तथा विस्तृत ( यज्ञ ) में आ ।

(५) यो अश्वेभिर्वहते वस्त उस्रास्त्रिः सप्त सप्ततीनाम्......॥ ऋ० ८ । ४६ । २६ ॥

जो ( वायु ) अश्वों ( घोड़ों ) से चलता है......।

(६) वायो याहि शिवा दिवो वह स्वासु स्वश्व्यम् । वहस्व महः पृथु पक्षसा रथे ॥ ऋ० ८ । २६ । २३ ॥

हे वायु ! जाओ कल्याणकारी (बनकर) सूर्य (के सामीप्य) से, लेती जाओ (अपने साथ-साथ) शीघ्र गति को, रथ के समीप उसके विशाल पंखों से महान् शब्द करो ।

(७) प्रयाभिर्यासि....वायविष्टये....॥

ऋ० ७ । ९२ । ३ ॥

अर्थात् हे वायु ! जिन के द्वारा तू जाता है......

(८) आ नो...याहि यज्ञम् । वायो......॥

ऋ० ७ । ६२ । ५ ॥

हे वायु ! हमारे यज्ञों में आ......।

(९) वहन्तु त्वा मनोयुजो युक्तासो नवतिर्नव वायवा-चन्द्रेण रथेन याहि सुतस्य पीतये ॥ ऋ० ४ । ४८ । ४ ॥

हे वायु ! तुझे ९९ जुड़े हुए ले आवें और तू आनन्दित करने वाले रथ के द्वारा उत्पन्न किए हुए के पीने तथा उसकी रक्षा करने के लिए आ।

(१०) वायवायाहि दर्शतेमे सोमा अरंकृता । तेषां पाहि श्रुधी हवम् ॥ ऋ० १।२।१॥

अर्थात् हे वायु! आइए, इन उत्पन्न पदार्थों को जो सुन्दर सजाए हुए हैं समर्थ करते हुए दीखने योग्य कीजिए ( इन को हमें दिखलाइये ), इन की रक्षा कीजिए तथा इन्हें पीजिए और बुलावे को ( वचनों को ) सुनिये। वायु चलता है, पदार्थ दिखलाता है, उन्हें ( जीने को ) समर्थ करता है, पुष्ट सुरक्षित करता है, उनका कुछ अंश साथ ले जाता है वाणी को उत्पन्न करता तथा औरों को उसे सुनाता है।

इन विविध स्थलों में "वायु" का मुख्य सम्बन्ध याहि, आयाहि, आवातु, अभिवातु, वेति, वहते, प्रयासि और वहन्तु से है। इन सब में "आत्मा देवानां..." मन्त्र में वर्णित "चरति"= चलता है, अर्थ प्रतीत होता है। इन्हीं 'या', 'वा', 'वी', 'वह' से अन्य स्थलों में भी वेद में "वायु" का सम्बन्ध बहुत बार आया है। इस से यही परिणाम निकलता है कि "वायु" शब्द की व्युत्पत्ति इन्हीं 'वा', 'वी', 'वह', और या धातुओं से होकर इस का अर्थ "गमनशील, प्रापणशील" है। इस अर्थ के सत्य, ऋषि-संमत होने में यह प्रमाण है कि :—

वायुर्वातेर्वेतेर्वा स्याद् गतिकर्मणः ॥

निरु० १०।१॥

वायु गत्यर्थक "वा" अथवा "वी" धातु से बनता है।

वी गतिव्याप्तिप्रजननकान्त्यसनखादनेषु ॥

वा गतिगन्धनयोः ॥

वा प्रापणे । धातुपाठे अदादिगणः । पृ० १६ । १७ ॥

वह प्रापणे । धातुपाठे भ्वादिगणः ॥ पृ० १५ ॥

भाषार्थः । धातुपाठे चुरादिगण ॥

अर्थात् "वी" का अर्थ गति, व्याप्ति, गर्भ होना, इच्छा, फेंकना और खाना है। "वा" का अर्थ गति और सूंघना है। "या' का अर्थ प्राप्त होना है। "वह" का अर्थ पहुँचाना है। "वह" का अर्थ शब्द करना है।

इस प्रकार हमारा वायु शब्द का अर्थ गमनशील, प्राप्त करवाने वाला अथवा ले जाया जाने वाला ( घोड़ों आदि से ) सर्वथा ऋषि-संमत है।

इस प्रकार हमने यहाँ वायु शब्द का व्युत्पत्ति-मूलक अर्थ वेद से निकाल कर दिखलाया। अब "सवितृ" शब्द का ऐसा ही अर्थ वेद से निकालते हैं यथा :—

## सविता

(१) ओ३म् देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय। दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतन्नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचन्नः स्वदतु ॥ यजु० ३ । १ ॥

अर्थात् हे सविता देव! यज्ञ को उत्पन्न कर और यज्ञ के रक्षक को ऐश्वर्य्य-प्राप्ति के लिये प्रेरणा कर दिव्य-गुण-युक्त, पृथिवी का धारण करने वाला ( राजा ) जो ज्ञान को पवित्र

करने वाला और वाणी का रक्षक ( अर्थात् नियामक ) है वह हमारे ज्ञान को पवित्र करे और हमारी वाणी को मीठी बनावे।

(२) ओ३म् तत्सवितुर्वरेण्यम्भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ यजु० ३०।२॥

अर्थात् उस सविता देव के पापनाशक वरने योग्य तेजस्वी स्वरूप का हम ध्यान करते हैं ( जो ) जिससे कि वह हमारी बुद्धियों को ( सन्मार्ग में ) प्रेरणा करे ॥

(३) ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव। यद्भद्रं तन्न आसुव ॥ यजु० ३०।२।

अर्थात् हे सविता देव ! सब दुःखों दुर्गुणों को हम से दूर पर उत्पन्न कीजिये और जो सुख कल्याण सद्गुण हों उन्हें हमारे समीप उत्पन्न कीजिये ॥

(४) ओ३म् विभक्तारं हवामहे वसोश्चित्रस्य राधसः। सवितारं नृचक्षसम् ॥ यजु० ३०।४॥

अर्थात् उत्तम सुखों में निवास कराने हारे, चित्र-विचित्र विविध धनों के बांटने वाले, सब मनुष्यों के द्रष्टव्य ( तथा उनके कार्य्यों के दर्शक ) सविता को हम ( इष्टदेव-रूपेण ) स्वीकार ( ग्रहण ) करते हैं।

(५) ओ३म् देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्। आददे नारिरसि ॥
यजु० ३७।१॥

अर्थात् आप ( नारि ) नेता हैं इस कारण उस सविता देव की ( सम्पूर्ण ) सृष्टि में से मैं अपनी ( सर्व कार्य्यों में शीघ्र )

व्यापने वाली भुजाओं से तथा पुष्ट करने वाले हाथों से आपको ही ग्रहण करता हूँ। हे स्त्रि ! शुभ यज्ञादिक कर्मों में ले जाने वाली वा प्रवृत्त करानी वाली ! मैं हाथों से तेरा ग्रहण करता हूँ।

(६) सविता प्रसुवाति तान्।

इस प्रकार परमात्मदेव ने यजुर्वेद तथा अन्य वेदों में "सविता" का वर्णन किया। अब हमें यह पता लगाना है कि यह "सविता" क्या है। ऊपर के मन्त्रों में "सविता" के साथ "सुव" क्रिया का प्रयोग अनेक बार हुआ है और अन्य स्थलों में भी वेद में "सविता" के साथ "सुव" का प्रयोग हुआ है। पञ्जाबी भाषा में "सू" का अर्थ जन्म देना वा बच्चा जनना है जैसे कहा जाता है कि "गाय सू पड़ी" "भैंस सू पड़ी" इत्यादि। इसी प्रकार जिस माता ने अभी बच्चे को जन्म दिया है उसका नाम भी "प्रसूता" अर्थात् "सूई हुई" है। इस सब लोक-व्यवहार से "सू" का अर्थ बच्चा जनना वा जन्म देना सिद्ध है ( इसी प्रकार लौकिक शब्दों से वेद-ज्ञान आगे भी प्राप्त होगा )। अब वेद में सुव का क्या अर्थ है इस के उत्तर में हम यह कहेंगे कि ऋग्वेद में :—

दधातु नः सविता सुप्रजामिषम्।

( सविता हमें उत्तम प्रजा और अन्न देवे ) कहा है वहाँ सविता से प्रजा दान के लिये प्रार्थना है और उसी मन्त्र में :—

प्रजावन्तं रयिमस्मै समिन्वतु। ऋ० ४। ५३। ७॥

( प्रजायुक्त धन हमें दे ) यही प्रार्थना फिर सविता से की है और यहां "सुव" शब्द नहीं प्रयुक्त हुआ कारण यह कि

इसका पर्य्याय "दधातु प्रजाम् ।" "प्रजावन्तं रयिं समिन्वतु ।" आदि आ गये हैं। इससे सिद्ध हुआ कि वेद "सविता" को "प्रसवकर्त्ता" मानता है अर्थात् "जनिता, जन्म-दाता, प्रजोत्पादक" आदि मानता है अथवा "सविता" "सर्वस्य प्रसविता"—सबका उत्पन्न करने हारा है। इसी कारण कभी तो सविता को यज्ञ उत्पन्न करने के लिये प्रार्थना की है कभी यज्ञ का रक्षक, कभी प्रजा, कभी धन और कभी सम्पूर्ण लौकिक पारलौकिक अभ्युदय निःश्रेयस सुख जिनको "भद्र" कहते हैं प्रार्थी के अर्थ उत्पन्न करने के लिये प्रार्थना की है इस कारण "सविता" "सर्वस्य प्रसविता" —सब का उत्पादक है। वेद ने इसे बिल्कुल खोल कर स्फुट रूपेण भी कह दिया है जैसे द्वितीयाध्याय में दिया गया है जहाँ कहा है:—

सविता प्रसवानामधिपतिः ।

अर्थात् सविता सब प्रजनन कार्य्यों का अधिष्ठाता है। इस प्रकार वेद से सविता के अर्थों का पता चला। यही सत्य, ऋषि-सम्मत अर्थ है यथा:—

सविता सर्वस्य प्रसविता । निरु० १० । ३१ ॥

अर्थात् सविता—सबका उत्पन्न करने वाला।

सविता वै देवानां प्रसविता ।

शत० १ । ७ । ४ । ४ ॥

अर्थात् सविता ही सब दिव्य पदार्थों का उत्पन्न करने वाला है। इस प्रकार सविता का मुख्य अर्थ उत्पन्न करने वाला कह कर इसके गौण अर्थों के लिये जब हम वेद को ढूंढते हैं तो देखते हैं कि:—

(१) व्रतानि देवः सविताभिरक्षते । ऋ० ४।५३।४॥

अर्थात् व्रतों की रक्षा सविता देव ( सब ओर से ) सब प्रकार करते हैं।

(२) स नो देवः सविता शर्म यच्छतु ॥ ऋ० ४।५३।६॥

अर्थात् वह सविता देव हमें शरण देवें वा हमारे लिये सुरक्षित स्थान देवे वा हमारी रक्षा करे।

(३) ह्वयामि देवं सवितारमूतये । ऋ० १।३५।१॥

अर्थात् सविता देव को मैं अपनी रक्षा के निमित्त पुकारता हूँ (कि "देव ! मेरी रक्षा करो" )

(४) ये ते पन्था सवितः...तेभिर्नो......रक्षा... ॥

ऋ० १।३५।११॥

अर्थात् हे सविता ! जो तेरे मार्ग हैं उनसे हमारी रक्षा कर ॥

इनमें (१), (४) में "रक्ष" शब्द स्वयं आ गया है। इस कारण तथा "शर्म", "ऊति" शब्दों के कारण जो "सविता" के दातव्य माने गये हैं हमें पता चलता है कि सविता का द्वितीय अर्थ रक्षक है।

हम फिर सविता शब्द के अन्य अर्थ जानने के लिये वेद खोलते हैं वहाँ देखते हैं कि:—

(१) ....देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मणे।

यजु० १ । १ ॥

अर्थात् सविता देव तुम्हें उत्तम कर्म ( यज्ञ ) में लगावे ( की ओर प्रेरित कर उस में प्रवृत्त कर )।

(२) ...सवितुः...भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ॥

अर्थात् जो सविता देव हमारी बुद्धियों को प्रेरणा करे।

इन (१), (२) से पता चलता है कि "सविता" "प्रेरणा करने वाला, लगाने वाला" भी है॥

इसी प्रकार फिर वेद खोलने पर पता चलता है कि :—

(१) केतपूः केतन्नः पुनातु......॥

अर्थात् ज्ञान का पवित्र करने वाला हमारे ज्ञान को पवित्र करे॥

(२) देवो वः सविता पुनात्वच्छिद्रेण ॥

अर्थात् सविता देव तुम्हें पवित्र करे॥

इन (१), (२) से पता चलता है कि "सविता"—"पवित्र करने वाला" भी है।

इस प्रकार हमें वेद ने बतलाया कि "सविता" का अर्थ "जनिता, रक्षक, प्रेरक और पावक" ( पवित्र करने वाला ) है। "सविता" के अन्य अर्थों पर फिर विचार करेंगे अब हम "यम" शब्द के अर्थ करते हैं यथा :—

# यम

"यम" के विषय में वेद कहता है कि :—

(१) स नो देवेष्वा यमद्दीर्घायुः। ऋ० १०।१४।१४॥

अर्थात् "वह हमें देवताओं के मध्य में,—विद्वानों से घिरे हुए हमें लम्बी आयु देवे—नियत करे।"

अर्थात् "यम" देने वा नियत करने वाला है। फिर वेद कहता है कि :—

(२) यमे इव यतमाने ॥ ऋ० १०।१३।२ ॥

अर्थ—जैसे कि वश में रखने के लिये बड़ा यत्न करते हुए "यम" में।

अर्थात् यम वश में रखने के लिये बड़ा यत्न करता है। इसे ही अधिक विस्तार में खोल कर वेद फिर कहता है कि :—

(३) सं या रश्मेव यमतुर्यमिष्ठा द्वा जनाँ असमा बाहुभिः स्वैः ॥ ऋ० ६।६७।१॥

अर्थात् "तुम दोनों यमों में उत्तम "यमिष्ठा" हो क्योंकि तुम उत्पन्न प्राणियों को अपनी (बल-रूप वा रश्मि-रूप) भुजाओं से इस प्रकार वश में करते, रोक रखते हो जैसे लगाम से (सारथी घोड़ों को वश में रखता है) क्योंकि तुम इस प्रकार सभी को वश में रखते हो इस कारण तुम यद्यपि आपस में बराबर नहीं तथापि अन्य सब की अपेक्षा अधिक यम, नियन्ता हो अतः तुम दोनों "यमिष्ठा" हो।" अतः यम उत्पन्न प्राणियों को वश में रखने वाला उन का नियन्ता है।

जिन मित्रावरुणौ को उपर्युक्त मन्त्र में "यमिष्ठा" कहा है उनकी बाबत ही वेद कहता है कि :—

(४) अधारयत पृथिवीमुत द्याम् ॥ ऋ० ५।६२।३॥

अर्थ—वही दोनों, पृथिवी और द्यौ—जमीन और आस्मान, धारण कर सहारा दे उन्हें थाम रहे हैं।

अतः "यमिष्ठा" ही धार रहे हैं अर्थात् 'यम" (पृथिवी और द्यौ को) धारण भी करता है, सहारा देता है, थामता है। उपर्युक्त

उदाहरणों में "यम" को बार-बार क्रिया का कर्त्ता कहा गया। अतः इसकी मुख्य व्युत्पति इस धातु सेउ चित प्रतीत होतो है। दूसरे शब्दों में इसकी व्युत्पत्ति यही है कि :—

यच्छतीति यमः ॥

इस प्रकार हमें यम शब्द की एक निरुक्ति वेद से प्राप्त हुई यही सत्य तथा ऋषि-संमत भी है क्योंकि निरुक्त में यास्क महर्षि ने यही लिखी है ॥

निरुक्त में वेद के शब्दों का अर्थ करने का एक और प्रकार भी लिखा है कि शब्द के अन्तिम, मध्यम, अथवा होनों अक्षरों को उड़ा कर तथा अन्तिम को बदल कर जो शब्द बने उसके और जिस शब्द को इतना बदला है उसके एक ही अर्थ समझ लें अर्थात् जिस शब्द के अर्थ का पता न चले उसे उपर्युक्त रीति से बदल कर उसके अर्थ कर लें। इस नियम का आशय ले जब हम "यमुना", "याम": और "यामिः" शब्द जो उणादि कोष में व्याख्यान हैं उनको उपर्युक्त रीति से बदलते हैं तो हमें "यमुना", "यामः" के स्थान में "यम" और "यामिः" के स्थान में "यमी" शब्द प्राप्त हो जाता है। अतः "यामः" और "यमुना" का व्युत्पत्ति-मूलक अर्थ ही "यम" का वैसा अर्थ होगा और "यामिः" वाला ही अर्थ "यमी" का होगा, ठीक जैसे "अग्रं यज्ञेषु नीयते" का "अग्रणी" होकर अग्नि हुआ पर अर्थ वही रहा, तनिक भेद नहीं हुआ। अतः "यम," "यमी" शब्दों के व्युत्पत्ति-मूलक अर्थ निम्न होंगे यथा :—

(१) यच्छतीति यमुना [ यमो वा ] ॥

(२) यायते प्राप्यते स यामः [ यमो वा ] ॥

(३) याति कार्याणि प्रापयतीति यामिः।
[ यमी वा ] आदेर्जत्वं जामिः [ जमी वा ]
( Iu Vernaculars of Punjabi )

इस प्रकार उणादि कोष में "यमुना" "यामः" "यामिः" शब्द की निरुक्ति द्वारा सिद्ध होता है कि "यम" वही है जो देता है, वश में रखता है और जिसके पास जाते हैं और "यमी" वह है जो सब कार्यों को प्राप्त करती है अर्थात् धर्म-कार्य्यों कर्त्तव्यों में सिद्धि प्राप्त कराने का यत्न करती है।

इस प्रकार इस शब्द के अक्षरों को लोप तथा विकृत कर उसके अर्थ निकालने के तरीके उणादि कोष के द्वारा इस निरुक्त के अर्थ-करण प्रकार का प्रयोग करके भी हमें वही अर्थ यम शब्द के प्राप्त हुए जो हमने वेद से निकाले थे। अतः वे अर्थ सत्य तथा पाणिनि और निरुक्त-सम्मत हैं और यमी के भी वेद उपर्युक्त अर्थात् कर्त्तव्यों की ओर झुकाने वाली अर्थ ही करता है क्योंकि प्रसिद्ध यम-यमी सूक्त में यमी ने पुत्रोत्पादन द्वारा अपने को अमर बनाने के लिये अर्थात् कर्त्तव्य-पालन के लिये यम को बार-बार बाधित किया है। अतः वेद तथा उणादिकोष तथा निरुक्त सब यमी का यही अर्थ करते हैं।

निरुक्त एक और प्रकार से भी अर्थ किया करता है यथाः—

कूपः कस्मात्कुपानं भवति कुप्यतेर्वा ॥

इसी प्रकार हम कहेंगे किः—

यमः कस्मात् यो ममार इति सतः यच्छतेर्वा ॥

इसमें से यच्छ्रुतेर्न्नी का तो वैदिक तथा आर्ष व्याख्यान ऊपर हो ही चुका पर यो ममार इति सतः के विषय में वेद कहता है कि:—

(५) यो ममार प्रथमो मर्त्यानां यः प्रेयाय प्रथमो लोकमेतम् । वैव स्वतं संगमनं जनानां यमं राजानं हविषा सपर्यत ॥

अर्थ—अपनी आहुतिओं द्वारा विवस्वान् के पुत्र उस यमराज को तृप्त करो जो सब मरण-धर्माओं में सब से प्रथम मरा और सब से प्रथम ही उस ( मर्त्य ) लोक को गया और जिसके पास ही सब उत्पन्न प्राणियों ने जाना है उसी यमराज को आहुतियों द्वारा प्रसन्न करो ।

"यम" वही है जो मरा । अतः वेद हमारी यो ममार निरुक्ति को सत्य सिद्ध करता है । अर्थात् निरुक्त की कूप शब्द की निरुक्ति का सहारा ले हमने वेद से यम शब्द की यह नवीन निरुक्ति निकाली है ।

शतपथ ब्राह्मण में एक विचित्र प्रकार से ही यजुः शब्द के अर्थ किये हैं यथा :—

यन्नेव जनयतीति यजुः ।

इसी प्रकार हम यम के सम्बन्ध में कहेंगे कि:—

(१) यन्नेव मिनोतीति यमः ।

(२) यन्नेव मारयतीति यमः ।

इनमें से प्रथम के विषय में वेद कहता है:—

अनुसार भी इसके अर्थों का कुछ दिग्दर्शन यहाँ करवाते हैं। यथा :—

१. ऊपर वेद "मित्रावरुणौ" को यमिष्ठौ=दो उत्तम यम लिख चुका है और ऋ० १० । १४ । ७ में भी लिखा है कि :—

उभा राजाना स्वधया मदन्ता यमं पश्यासि वरुणं च देवम् ॥

अर्थात् "( हे मृत-सम्बन्धि ! ) तू यम और वरुण देव दोनों राजाओं को अपनी धारणात्मिका शक्ति के द्वारा आनन्द मनाते हुए देखता है।" अतः यहाँ यम और वरुण दोनों को इकट्ठा स्मरण किया है परन्तु क्योंकि यम यमी इकट्ठे और मित्रावरुणौ इकट्ठे स्मरण किये जाते हैं अतः यहाँ पर मित्र ही यम और वरुण ही यमी सिद्ध होते हैं।

इस प्रकार यम यमी का अर्थ मित्रावरुणौ है। फिर वेद अग्नि को सम्बोधन करके कहता है कि :—

असि यमः···ऋ० १ । १६३ । २ ॥

अर्थात् "तू यम है"

फिर भी अग्नि ही के विषय में वेद कहता है कि :—

यमो ह जातो यमो जनित्वं जारः कनीनां पतिर्जनीनाम् ॥

अर्थात् "अग्नि (क्योंकि मन्त्र-देवता अग्नि है और उपर्युक्त मन्त्रानुसार यम नाम अग्नि है) कन्याओं के कमनीयत्व का जरयिता और जायाओं का रक्षक अर्थात् कन्यापन को हटा कर जायापन करने वाला प्रसिद्ध है और होगा।"

इस प्रकार इन दोनों प्रमाणों में यम का अर्थ अग्नि सिद्ध है अर्थात् यम नाम अग्नि का है।

फिर वेद इन्द्राग्नी: के विषय में कहता है कि :—

बळित्था महिमा वामिन्द्राग्नी पनिष्ठ आ। समानो वां जनिता भरातरा युवं यमाविहेह मातरा

ऋ० ६। ५९। २॥

अर्थात् हे इन्द्र और अग्नि! तुम्हारी महिमा महान् है··· तुम्हारा पिता एकही है, तुम दोनों भाई हो और यम जोड़े हो···

अतः इस मन्त्र में इन्द्र और अग्नि को यमौ भ्रातरौ एक ही पिता वाले कहा है। अब यमौ भ्रातरौ में पितरों की न्याईं यदि समास अनुमान करें तो जैसे :—

माता च पिता च पितरौ

होता है वैसे ही—

यमश्च यमी च यमौ

यमी च यमश्च यम्यौ

भ्राता च स्वसा च भ्रातरौ

सिद्ध होते हैं जिन समासों के द्वारा यमौ और यम्यौ से यम यमी का और भ्रातरौ से भाई बहिन का ग्रहण होता है और तभी यह अग्नि तथा इन्द्र के वाचक बनते हैं इस प्रकार यम यमी का अर्थ अग्नि इन्द्र है।

यहाँ अग्नि से तात्पर्य पार्थिव अग्नि का है न कि आदित्य का। क्योंकि पहिले तो "जारः कनीनां पतिर्जनीनाम्" यह पार्थिव अग्नि ही है न कि आदित्य। क्योंकि पार्थिव अग्नि को ही प्रज्व-

लित कर विवाह होता है जब कन्या का कन्यापन उड़ा कर उसे जाया पत्नी, वधू बनाया जाता है और दूसरे :—

सूरादश्वं वसवो निरतष्ट ऋ० १ । १६३ । १

इसी (यम) अश्व (अग्नि) को वसुओं ने सूर से बनाया था सूर नाम सूर्य्य का है अतः यह यम अग्नि सूर से बनती है अतः आदित्य नहीं वरंच पार्थिव है और तीसरे किसी अन्य अग्नि को वेद कहता है :—

उष उषो हि वसो अग्रमेषित्वं यमयोरभवो विभाव ।
ऋ० १० । ९ । ४ ।

अर्थ—हे उषा के प्रकाशक ! (ज्योति के) निवास-स्थान ! तू यम-यमी का प्रकाशक उनका निर्माता होता हुआ आगे आगे ही जा रहा है । साफ़ है कि यहाँ अग्नि से तात्पर्य आदित्य से है जो उषा को उषा बनाता हुआ आगे-आगे जा रहा है और यम-यमी को बनाता जा रहा है ।

अतः साफ़ है कि यम-यमी का पिता आदित्य है और यम उपर्युक्त पार्थिव अग्नि है और यमी इन्द्र विद्युत है ।

अतः यम यमी का प्रथम अर्थ मित्र और वरुण है और द्वितीय अर्थ पार्थिव अग्नि और इन्द्र है । परन्तु मित्र का अर्थ पार्थिव अग्नि और आदित्य दोनों हैं क्योंकि वेद कहता है कि :—

अधारयत पृथिवीमुत द्यां मित्रराजाना...

अर्थात् दो मित्र राजाओं ने पृथिवी और द्यौ को धारण कर रक्खा है अतः पृथिवी की धारक पार्थिव अग्नि और द्यौ का धारक आदित्य दोनों का वाचक मित्र है ।

इस प्रकार सिद्ध हुआ कि यम-यमी का अर्थ अग्नि इन्द्र अथवा मित्रावरुण है और यह विवस्वान् सूर आदित्य के पुत्र पुत्री होने से जौड़े भाई-बहिन हैं।

सार यह है कि विवस्वान् सूर्य से अग्नि पार्थिव और विद्युत अन्तरीक्ष दोनों उत्पन्न होती हैं और इस पार्थिव अग्नि के द्वारा कन्याएँ जायाएँ बनतीं हैं और इसका दूत मृत्यु सबको मार कर इस चिन्तास्थ पार्थिव अग्नि में उन सबको लाता है परन्तु देवयान के पथिक लौट कर पार्थिव अग्नि में ही नहीं आते पर ऊपर सूर्य में जाते हैं और अन्य सब इसी चितास्थ अग्नि के पंजे में पड़ते हैं। इस प्रकार आदित्य विवस्वान् सबको अमृतत्व देता है पर उसका पुत्र यम, मृत्यु। इस प्रकार यहाँ यम शब्द के अर्थ कहे गये और उसके साथ ही यमी, मित्र, वरुण, इन्द्र, अग्नि के अर्थों पर भी कुछ प्रकाश डाला ही गया है। इस प्रकार अग्नि, इन्द्र, वायु, सविता, यम शब्दों के कुछ अर्थ कह कर यह अध्याय यहीं समाप्त करते हैं।

# ऋषि, देवता, छन्द, स्वर

ऋषि देवता, छन्द, स्वर की वैदिक प्रमाणों द्वारा व्याख्या करने का यत्न किया जाता है।

ऋषि कौन होते हैं? उत्तर वेद देता है :—

सहस्तोमाः सहछन्दस आवृतः सहप्रमा ऋषयः सप्त दैव्याः।
पूर्वेषां पन्थामनुदृश्य धीरा अन्वालेभिरे रथ्योऽन रश्मीन॥
ऋ० १०।१३०।७॥ यजु० ३४।४९॥

अर्थात् स्तोमों अर्थात् स्तुति सूक्तों के साथ, छन्दों के साथ, ज्ञान के साथ युक्त हुए तथा इन तीनों की सहायता से बलवान्, पाँचों ज्ञान इन्द्रियों तथा मन और बुद्धि इन सातों को दिव्यावस्था में अत्यन्त सात्विक अर्थात् उन्नत और पवित्र अवस्था में रखने वाले, सब उत्तम उत्तम गुणों से वस्त्रों की न्याईं ढके हुए, जो आप्त विद्वान् धर्मात्मा लोग अपने से पूर्व हुए वैसे ही आप्तों के तथा सर्व पूर्व आप्त परमात्मा के दरशाये मार्ग को फिर से देखकर, दोबारा ढूंढ़ कर उस को फिर नये सिरे से लाभ नाम प्राप्त करते हैं :तथा इस प्रकार ढूंढ़ कर, पाकर, उस को इस धीरता वा दृढ़ता से पकड़ते हैं जिस से कि रथ में स्थित रथवान् ( घोड़ों की ) लगामों को, वे धीर बुद्धि में रमण करने वाले, वेद तथा धर्म के साक्षात् द्रष्टा ऋषि होते हैं जैसे कि अथर्व० का० २ सू० १ के वेन ऋषि वाले प्रथम मन्त्र से सिद्ध है क्योंकि वह मन्त्र कहता है:—

वेनस्तत् पश्यत परमं गुहा यद् यत्र विश्वं भवत्येकरूपम् ।

अर्थात् जिस में सब संसार एक रूप हो जाता है और जो अवस्था परम गूढ़ है उस "तत्" संज्ञक प्रलयावस्था को केवल वेन ही देखता है । अर्थात् प्रलयावस्था, ब्रह्म, धर्म आदि का साक्षात् द्रष्टा वेन ही होता है । अब इस मन्त्र का ऋषि भी वेन ही लिखा है और वेन ही मन्त्र में द्रष्टा कहा गया है अतः ऋषि वह है जो द्रष्टा हो । इसी कारण यहाँ पर भी वेन ऋषि उसे कहा है जो प्रलयावस्था को भी देख सके अर्थात् तत्त्ववेत्ता मुक्तात्मा ही वेन ऋषि कहला सकता है ।

और जो कोई वेद के सूक्तों छन्दों का ज्ञाता, उत्तम ज्ञानी, धीर, अर्थात बुद्धिमान, धैर्यवान्, सब उत्तम गुणों से युक्त, Research scholar हो अर्थात् पूर्वों के लुप्तप्राय मार्ग का फिर से अन्वेषण द्वारा साक्षात् कर फिर से लाभ कर उसे दृढ़ता से अपने आचरण में घटाने वाला हो वही ऋषि होता है, उसके मन, बुद्धि तथा पाँचों ज्ञान इन्द्रियाँ यौगिक दिव्यशक्ति सम्पन्न होते हैं । ऐसा महात्मा ऋषि होता है ।

अब क्योंकि मन्त्रोपरि लिखित ऋषियों ने उन-उन मन्त्रों के अज्ञात अर्थों का दर्शन कर औरों को उनका उपदेश किया तथा उनके अनुकूल आचरण किया, अतः वह ऋषि कहलाये और उनके नाम मन्त्रोपरि लिखे गये । वे Vaidic Research Scholars थे क्योंकि सर्व पूर्व आप्त परमात्मा के अपने वेद द्वारा दिखलाए मार्ग का उन्होंने अनु अर्थात् फिर से दर्शन कर अर्थात् उसके मन्त्रों के भूले वा अज्ञात अर्थों का दर्शन कर औरों को कराया और उसे ही अपने जीवन में घटाया; इस

कारण वह ऋषि हुए। इस प्रकार हमने वेद से "ऋषि" का लक्षण किया। अब इन ऋषियों का मुख्य कर्त्तव्य क्या है। वेद कहता है:—

अग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिरीड्यो नूतनैरुत ॥

ऋग्वेद १।१।२॥

अर्थात् नये पुराने अर्थात् ब्रह्मचारी तथा आचार्यरूप सर्वकालीन ऋषियों को सब से प्रथम अग्नि के विषय में खोज करनी चाहिये, अग्नि के लक्षण जानने चाहियें तथा अग्नि की ही स्तुति पूजापूर्वक उपासना करनी चाहिये। इस प्रकार हम ने सिद्ध किया कि:—

Rishis are Vaidik Research Scholars of sound exemplary moral character' who possess fully developed senses of knowledge mind and wisdom; their chief duty lies in doing research work on the subject of "Agnih."

निरुक्तकार भी ऋषियों को मन्त्रादि द्रष्टा ही मानते रहे हैं यथा:—

एवमुच्चावचैरभिप्रायैर्ऋषीणां मन्त्रदृष्टयो भवन्ति ॥

निरु० दै० अ० १ खं० ३ ॥

अर्थात् इसप्र कार उत्तम तथा अधम अभिप्रायों को लेकर ऋषियों को मन्त्रों का दर्शन होता है जैसे:—

शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये ॥

मन्त्र में उत्तम अभिप्राय वाली दृष्टि से अर्थ परमात्मा सम्बन्धी और अवम अभिप्राय वाली दृष्टि से अर्थ जल सम्बन्धी होता है। इस प्रकार जिनकी मन्त्रो में दृष्टि हो वह ऋषि होते हैं। फिर :—

ऋषिर्दर्शनात्स्तोमान्ददर्शेत्यौपमन्यवस्तद्यदेनांस्तपस्यमानान्ब्रह्म स्वयम्भ्वभ्यानर्षत्त ऋषयोऽभवन्तदृषीणामृषित्वम्

निरु० नै० अ० २ खं० ११ ॥

अर्थात् दर्शन करने से ऋषि होता है। औपमन्यवाचार्य मानता है कि स्तोम, स्तुति सूक्तों के अर्थों के साक्षात् कर्त्ता अर्थात् द्रष्टा होने से वे पूर्वज ऋषि कहलाये। क्योंकि इन तपस्या करते हुओं को स्वयम्भू ब्रह्म अर्थात् परमात्मा तथा वेद मन्त्रों के अर्थों के दर्शन हुए अर्थात् साक्षात्कार हो गये अतः यह ऋषि हुए। यही ऋषियों में ऋषिपन है। ऋषियों का ऋषित्व इस वेद तथा ब्रह्म दर्शन में ही है।

इसी प्रकार कहीं और भी कहा है मन्त्रद्रष्टारः हि ऋषयः अर्थात् मन्त्रद्रष्टा ही ऋषि कहलाए। फिर कहा है कि :—

साक्षात्कृतधर्माण ऋषयो बभूवुस्तेऽवरेभ्योऽसाक्षात्कृतधर्मभ्य उपदेशेन मन्त्रान्त्सम्प्रादुः ॥

निरु० नै० १ खं० २०

अर्थात् धर्म को जिन्होंने साक्षात् किया वे ही ऋषि हुए उन्होंने अपने से अवर अर्थात् दूसरे न्यून बुद्धि आदि उत्तम गुणों वाले तथा धर्म को साक्षात् करने में असमर्थ पुरुषों को अपने उपदेश द्वारा मन्त्र दान अर्थात् मन्त्रार्थ दान किया।

इस प्रकार निरुक्त से भी यही साक्षी मिलती है कि जो हमने ऊपर ऋग् तथा अथर्व के मन्त्र से सिद्ध किया है वही ऋषि का यथार्थ लक्षण है अर्थात् परमात्मा, वेद मन्त्रार्थ तथा धर्म का साक्षात् करण। बस हमारा वेद से प्रतिपादित लक्षण तथा निरुक्त कर्त्ता यास्क प्रतिपादित लक्षण सम्मत हैं; अतः सत्य है।

इस प्रकार यह पता चला कि जिन्होंने वेद में प्रदर्शित मार्ग का अवलम्बन किया था उन्हीं पूर्व सृष्टियों में हुए ऋषियों के मार्ग का इस सृष्टि के आरम्भ में जिन्होंने वेद मन्त्रों को जान कर फिर से पता लगाया तथा औरों को पता दिया तथा उन मन्त्रोक्त धर्म तथा परमात्मा को साक्षात् किया उन्हीं दिव्य ज्ञान साधनों से युक्त धर्मात्माओं का नाम ऋषि हुआ और उन में से जिस जिस मन्त्र ने जिस जिस मन्त्र का अर्थ जान औरों को जनाया उसी का नाम उस उस मन्त्र पर आदरार्थ लिखा है यह प्रति मन्त्र प्रति ऋषि सम्बन्ध वेद का विषय नहीं क्योंकि यह नित्य नहीं वरञ्च हर सृष्टि में फिर फिर भिन्न रीत्या होता है अतः यह लौकिक इतिहास है इस विषय के प्रमाण वेद से नहीं निकल सकते अतः हम इसे यहां बन्द कर अब 'देवता' विषय का वेद द्वारा विचार आरम्भ करते है।

हम द्वितीय अध्याय में सिद्ध कर चुके हैं कि अग्नि, वायु अदि सब देवता कहलाते हैं और इसी न्यायानुसार मन्त्रों पर कहीं अग्नि देवता, कहीं वायु देवता आदि लिखे हैं और साथ ही यह भी वहां साफ़ है कि उन सूक्तों वा मन्त्र के वे अग्नि अथवा वायु आदि ही विषय हैं। अतः हमारा वेदाश्रित

देवता सम्बन्धि विचार यही है कि इस प्रसङ्ग में देवता का अर्थ विषय अर्थात् (Subject) व मजमून ही है।

इस बात का हम खण्डन कर ही चुके हैं कि "देवता तथा ऋषि मन्त्रवक्ता अथवा मन्त्र श्रोता हैं" अतः इस विषय का अधिक व्याख्यान इष्ट नहीं। हां इतना कह देना उचित है कि जहां मन्युः, श्रद्धा, काम, ज्ञान आदि गुण ही देवता हैं वहां हमारा पक्ष स्वतः ही स्पष्टतया सिद्ध हैं क्योंकि गुण किसी व्याख्यान का विषय तो हो सकता है परन्तु वक्ता वा श्रोता कदापि नहीं हो सकता। इसका एक उदाहरण हम यहां देते है क्योंकि इस से यह भी स्पष्ट होगा कि ऋषि वक्ता नहीं और देवता श्रोता नहीं। उदाहरण यह है :—

बृहस्पते प्रथमं वाचो अग्रं यत्प्रैरत नामधेयं दधाना।
यदेषां श्रेष्ठं यदरिप्रमासीत्प्रेणा तदेषां निहितं गुहाविः॥

ऋग्० मं० १० सू०७१ मं० १

ऋषिः बृहस्पतिः॥ देवता ज्ञान॥

अर्थात् हे बृहस्पते! वाणी का पहिला अग्र भाग जो भूत मात्र के नाम धारण करता हुआ निकला था जो इन (वाणी के सब भागों) से श्रेष्ठ था जो इन के शत्रुओं (काम क्रोधादि) का पूरा ज्ञान कराने में समर्थ था और जो इन का उत्तम नेता था परन्तु अब जो इन के लिये गूढ़, छिपा हुआ है वह इन के लिये खोल दे अर्थात् इन की बुद्धि में उस ज्ञान का विकास करदे।

इस मन्त्र का वरञ्च सारे सूक्त का देवता ज्ञान है न कि बृहस्पति और इसका ऋषि बृहस्पति है। परन्तु इस में बृहस्पते बृहस्पति को संबोधन करके कहा है और कहा है कि इन के

लिये छुपे हुए ज्ञान को प्रकाशित कर दे। बस साफ़ है कि यहां न तो ऋषि बृहस्पति वक्ता है क्योंकि बृहस्पति को तो कोई और कह रहा है और न ही ज्ञान देवता है श्रोता है क्योंकि ज्ञान को सम्बोधन करके नहीं कहा बल्कि बृहस्पति को सम्बोधन करके कहा है और ज्ञान तो विषय है क्योंकि किसीने किसी बृहस्पति को कहा है कि इन को ज्ञान प्रकाश दे क्योंकि वह वाणी इन के लिये छुप गई है। अतः साफ है कि यह मन्त्र उपरोक्त विचार के प्रतिकूल है।

अब यदि हमारा सिद्धान्त लिया जावे कि परमात्मा वक्ता है, कोई चेतन श्रोता है, देवता विषय है और ऋषि केवल अर्थ समझाने वाला है तो मतलब साफ है कि परमात्मा देव किसी "बृहती=वाग्" के "पति=रक्षक" अर्थात् वेद के विद्वान् जो वेद दूसरों को पढ़ा कर वेदवाणी को सुरक्षित करता है। उस को आज्ञा देता है कि हे बृहस्पते ! जो सम्पूर्ण भूतमात्र को नाम देने वाला, वाणी के सर्वोत्तम प्रथम भाग वेद (अन्य भाग वह है जो मनुष्यादि बोलते हैं) निकला था जो इन सब के लिये कल्याणकारी और इन को अपने शत्रु जीतने के लिये काफ़ी था वह अब इन के लिये छुपा हुआ है (क्योंकि यह अज्ञानवश उसे समझ नहीं सकते) तू इस वेदरूपी कोश को इन के लिये खोल दे।

इस प्रकार इस मन्त्र का समन्वय हमारे सिद्धान्त के अनुसार ही हो सकता है अन्य किसी प्रकार नहीं। इसी प्रकार सारे ही इस सूक्त का यही हाल है। अतः हम बाकी सूक्त का अर्थ नहीं करते। इसी प्रकार इन्द्र तथा उस की

माताओं वाले सूक्त का भी इस प्रकार ही समन्वय हो सकता है क्योंकि इन्द्र मातरः देवपत्न्यः उस सूक्त का विषय तो हैं पर उस के विशेषकर प्रथम मन्त्र के तो वे न वक्ता हो सकती हैं और न श्रोता। अतः सिद्ध हुआ कि देवता रूपेण मन्त्रोपरि लिखित अग्नि आदि मन्त्र विषय ही हैं। इस प्रकार वेद का आशय ले कर मन्त्रोपरि लिखित देवता विचार किया गया है।

वेद से छन्द शब्द के अर्थ द्वितीय अध्याय में कहे जा चुके हैं। परन्तु मुख्य छन्द सात हैं जैसे अथर्ववेद काण्ड १९ अनुवाक ३ सू० २१ मन्त्र १ में लिखा है कि :—

गायत्र्युष्णिगनुष्टुब् बृहती पङ्क्तिस्त्रिष्टुब् जगत्यैः

अर्थात् गायत्री, उष्णिग्, अनुष्टुप्, बृहति, पङ्क्ति, त्रिष्टुप्, और जगती। यही मन्त्र तोड़ कर पिङ्गल (अथवा उसके पूर्व जो छन्द विद्या के प्रथम सूत्रकार आचार्य हुए) ने दो सूत्र गायत्री पिङ्गल २।२।। और तान्युष्णिगनुष्टुब्बृहती पङ्क्तिस्त्रिष्टुब्जगत्याः पिङ्गल २।१४॥ बना दिये हैं। फिर यही छन्दविभाग प्रतिदेवता ऋग्वेद में इस प्रकार वर्णित है कि—

अग्नेर्गायत्र्यभवत्सयुग्वोष्णिहया सविता सम्बभूव !<br>
अनुष्टुभा सोमो उक्थैर्महस्वान् बृहस्पतेर्बृहती वाचमावत् ।४।<br>
विराण्मित्रावरुणयोरभिश्रीरिन्द्रस्य त्रिष्टुबिह भागो अह्नः।<br>
विश्वान्देवाञ्जगत्या विवेश तेन चाक्लृप्त ऋषयो मनुष्याः ।५।

ऋग्० मं० १० सू० १३० मं० ४, ५॥

अर्थात् अग्नि का साथी गायत्री छन्द, सविता का उष्णिक् सोम का अनुष्टुप्, बृहस्पति का बृहती, मित्रावरुणों का विराट् (पंक्ति), इन्द्र का त्रिष्टुप् और विश्वेदेवों का जगती। यही पिङ्गल के छन्दसूत्र में अध्याय ३ के सूत्र ६३ से प्रकट है। इस प्रकार छन्द विषय का हमने तनिक सा वैदिक वर्णन किया अब 'स्वर' सम्बन्धी केवल एक मन्त्र लिख कर इस ऋषि, देवता छन्द, स्वर विषय को समाप्त करते हैं। मन्त्र यह है :—

ऋक् साम् यजुरुच्छिष्ट उद्गीथः प्रस्तुतं स्तुतम् ।
हिङ्कार उच्छिष्टे स्वरः साम्नो मेडिश्च तन्मयि ॥

अथर्व० का० ११ सू० ७ मं० ५॥

अर्थात् नित्यरूपेण यह सब गान विद्या की सम्पूर्ण कलाओं का ज्ञान, मन्त्रों के स्वर आदि उस उच्छिष्ट में ही स्थित है। अतः स्वर ज्ञान भी नित्यरूपेण उस परमात्मा अर्थात् उच्छिष्ट में ही स्थित है।

प्रो० रुलियाराम एम० एस० सी कृत "वैदिक प्रमाणों से वेद का अर्थ" नामक लघु ट्रैक्ट आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब ने १९९० में प्रकाशित किया था। इस ट्रैक्ट में वेद का वेद से भाष्य करने का एक ही शैली का वर्णन था। उस पर जो विद्वज्जनों की सम्मतियाँ प्राप्त हुई हैं वे नीचे उद्धृत की जाती हैं।

## १. श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी—

ढंग नूतन ही है, परन्तु उत्तम है, यदि देवता वाचक पदों के इसी भान्ति अर्थ किये जायें तो मार्ग में सरलता आजायगी।

## २. श्री पाद दामोदर सातवलेकर जी—

मुझे स्वयं श्री पं० रुलियाराम जी के इस विषय के यत्न पसन्द हैं।

## ३. श्री नारायण स्वामी जी—

लेखक ने जो ऋग्वेद के प्रथम ( अग्नि ) सूक्त में प्रयुक्त पहले मन्त्र के शब्दों के अर्थ वेद के मन्त्रों से करने का यत्न किया है, यह यत्न सराहनीय है।

## ४. श्री पं० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु—

जो प्रक्रिया प्रो० रुलियाराम जी ने लिखी है वह ग्राह्म है, इसी प्रक्रिया के संबन्ध में आचार्य ऋषि दयानन्द ने यजुर्वेद में कई स्थलों पर निर्देश किया है ऋग्वेद के मन्त्र "इन्द्रेण वायुना' से विशेष्य विशेषण भाव से अर्थ करने की शैली वह दर्शा चुके हैं।

यह प्रक्रिया बहुत उपयोगी है, "पर केवल इसी प्रक्रिया से वेद का अर्थ करना" यह बात मैं ठीक नहीं समझता, हमें

प्रवृत्ति निमित्त और व्युत्पत्ति निमित्त पर पूरा ध्यान रखते हुये इस विषय पर कुछ लिखना होगा।

## ५. श्री पं० देवशर्मा जी

यह बड़ा उत्तम लेख है! मैंने इसे संपूर्ण पढ़ा है। और पढ़ कर इस परिणाम पर पहुँचा हूँ, कि लेखक ने अपने प्रतिपाद्य विषय को बड़ी खूबी से प्रतिपादित किया है और दिखला दिया है कि वेद का अर्थ वैदिक वाक्यों से कैसे किया जा सकता है!

## ६. श्री पं० गंगाप्रसाद जी एम. ए.

वेदों से वैदिक भाष्य करने की शैली बड़े महत्त्व की है। मेरी सम्मति में इससे स्वाध्याय प्रेमियों और वैदिक अनुसन्धान के विद्यार्थियों को बहुत सहायता मिलेगी, इस शैली के अनुसार यदि कोई वेद भाष्य करे तो वह बहुत लाभदायक होगा। और उससे वेदों के सरल सुगम और ठीक अनुवाद करने व छापने में भी सहायता मिलेगी।

## ७. श्री प्रो० रामदेव जी

लेखक ने वेद से वेद के अर्थ करने की शेली पर अच्छा प्रकाश डाला है मैं इनके विचार से सहमत हूँ।

## ८. श्री पं० घासीराम जी

मैं प्रो० रुलियाराम जी की स्थापना से पूर्ण रूप से सहमत हूँ। इससे उत्तम प्रणाली दूसरी नहीं हो सकती इसके अनुसार किये हुये अर्थ किसी अंश में भी सन्देहास्पद नहीं हो सकते। प्रो० महोदय ने जिन शब्दों के अर्थ इस ट्रैक्ट में किये है उन की सत्यता एकदम हृदयङ्गम हो जाता है।

## ९. श्री मास्टर आत्माराम जी बड़ौदा

यह लघु पुस्तक मैंने विचारपूर्वक पढ़ी। अति उत्तम कोटि की है, इस शैली के प्रचार की भारी ज़रूरत देश में है। मैं इस उत्तम स्वाभाविक शैली की प्रशंसा करता हूँ।
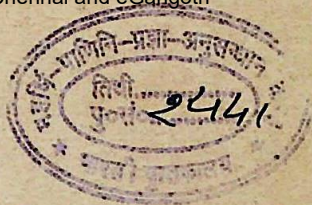
# निवेदन

इस पुस्तिका में छापे गये लेख "वैदिक धर्म" में पौष, माघ और फाल्गुन संवत् १९८२ में प्रथम बार जनता के सामने रक्खे गये थे। लेखक को इस बात का हर्ष है। इन नौ दस वर्षों में इन लेखों ने अपना प्रभाव आर्य अनुसन्धान कर्त्ताओं पर डाला है और इन में दर्शाई गई विधियों का अनुकरण करके उत्तम कोटि के लेख "वैदिक धर्म" में पढ़कर लेखक अपने श्रम को फलीभूत समझता है। श्रीमती आर्य प्रतिनिधि सभा पञ्जाब ने अपनी अनुसन्धान-प्रियता का परिचय पौष में छपे लेख को अपने "वैदिक प्रमाणों से वेद का अर्थ" नामक ट्रैक्ट को सं० १९९० में छाप कर दिया है जिस के लिये लेखक सभा का कृतज्ञ है। प्रथम संस्करण में तो केवल एक ही विधि वैदिक वाक्यों से ही वेद का अर्थ करने की दर्शायी गई थी। प्रस्तुत परिवर्द्धित संस्करण में तीन शेष रीतियाँ भी दे दी गयी हैं और अन्त में अग्नि, इन्द्र, वायु, सविता और यम के इन्हीं रीतियों से प्राप्त किये गये अर्थ भी पाठकों की रुचि तृप्त करने के लिये दे दिये गये हैं।

आशा है विज्ञ पाठकों के लिये यह वेद-भाष्य की वैदिक शैलियाँ वेदार्थ प्रदर्शक ज्योति का कार्य करेंगी।

वेद तथा ईश्वर को अपना सर्वस्व माननेवाला

रुलियाराम

## वेद के स्वाध्याय

# अनोखे ग्र

वेदामृत—ईश्वर, जीव, सृष्टि
संस्कार, ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, ब्राह्मण, क्ष
नीति, सहृदयता, एकता, समानता,
साढ़े चार सौ पृष्ठ की यह पुस्तक है । सम्पादक—स्वामी वेदानन्द तीर्थ । मूल्य २॥)

पीयूष विन्दु—इस में विविध विषयों पर १०० मन्त्रों का संग्रह किया गया है । लेखक—पं० शिवशंकर काव्य-तीर्थ । मूल्य ।-)

वेदार्ष कोष—ऋषि दयानन्द के वेद-भाष्य से वैदिक शब्दों के अकारादि क्रम से अर्थ लिखे गए हैं । इस में निरुक्त तथा ब्राह्मण ग्रन्थों की टिप्पणियां भी दी गई हैं । प्रथम भाग प्रस्तुत हैं । इस में अकार से लेकर औकार तक से प्रारम्भ होने वाले शब्द आ गए हैं । मुख्य सम्पादक—पं० चमूपति एम० ए० । मूल्य ५)

सभा द्वारा प्रकाशित सर्व पुस्तकों की जानकारी के लिए पुस्तकों का सूची-पत्र मंगवाइये ।

**साहित्य विभाग, आर्य प्रातिनिधि सभा पंजाब,**
**गुरुदत्त भवन, लाहौर ।**